महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा

(द्वितीय एवं तृतीय खण्ड)

पृष्ठ संख्या
301-416
तक

साधु कृष्णप्रेम

हैं । पू. गुरुदेव जब श्रीपोद्दार महाराजके साथ गीताप्रेस, गोरखपुरसे निकली दूसरी तीर्थयात्रा ट्रेनमें काशी पहुँचे थे तो श्रीअन्नपूर्णा मन्दिरमें उन्हें भगवती अन्नपूर्णाके दर्शन हुए थे । इसी यात्रामें पू. गुरुदेवने लेखकके पूर्वाश्रमके पू. मामाजी श्रीचिम्ननलालजी गोस्वामी द्वारा इस महासिद्ध श्रीयंत्रराजका पूजन कराया था । इसी पूजनके क्रममें यह उपनिषद् एवं ये प्रयोग विधिके मंत्र पू. गुरुदेवने मेरे मामाजीको बताये थे । पू. मामाजीसे पूर्ण श्रीक्रमकी क्रिया न कराकर भावनोपनिषद् द्वारा ही उन्होंने पूजा सम्पादित करायी थी । जब यह तीर्थयात्रा मद्रास पहुँची तो वहाँ भी भगवती त्रिपुरसुन्दरीका पूजन इसी भावनोपनिषद्की इसी प्रयोग पद्धतिसे हुआ था । इसी पूजा प्रसंगमें ही पू. गुरुदेव ने यह रहस्य भी मेरे मामाजीके सम्मुख प्रकट किया था कि क्रिया पूजाके अभावमें वे इसी प्रयोग पद्धतिसे जो उन्हें कण्ठस्थ है, पूजा करते हैं । मेरे मामाजीने सन् १९५८ ई. में जब पू. गुरुदेव काण्ठमौन की गंभीर स्थितिमें थे एवं श्रीपोद्दार महाराजके साथ रतनगढ़ चले गये थे, तो यह पूजा पद्धति मुझे दिखायी थी और मैंने उसे अपनी कापीमें नोट कर ली थी ।

इसीलिये लेखकको ज्ञान था कि सब पूजाएँ विसर्जित करनेके उपरान्त पू. गुरुदेव इस महायाग पद्धतिसे ही श्रीविद्या–उपासना करते थे । इस भावनोपनिषद्के कुल छत्तीस सूत्र हैं, जिनका वर्णन नीचे दिया जा रहा है ।

।। अथ श्री भावनोपनिषद् ।।

सूत्र {१}

श्रीगुरुस्सर्वकारणभूता शक्तिः

{श्रीगुरु ही सर्वकारणभूता शक्ति हैं}

{प्रयोग विधि}

मूलसे प्राणायाम करके ऋष्यादि न्यास करें, इसके उपरान्त विवेक–वृत्ति अवच्छिन्न चिच्छक्ति स्वरूप सुषुम्ना रूप भगवान् दक्षिणामूर्त्ति गुरुको नमस्कार करें।

सूत्र {२}

तेन नवरन्ध्ररूपो देहः ।।

भगवान् गुरुदेवसे ही यह नवरंध्रों युक्त देह है ।

ब्रह्मरंध्रको स्पर्श करके यह भावना करें, शरीरमें नौ ही नाड़ियाँ हैं एवं नौ रंध्र हैं वे ही कादि सम्प्रदायके नौ गुरु हैं । ये नौ गुरु हैं ––प्रकाश, विमर्श, अनन्तत्व, ज्ञान, सत्य, पूर्णत्व, स्वभाव, प्रतिभा एवं सहजता ।

मंत्र {१}

दक्षश्रोत्ररूपपयस्विन्यात्मने प्रकाशानन्दनाथाय नमः

{दक्षिण श्रोत्र रूप रंध्र {छेद} पयस्विनी नाड़ी सहित प्रकाशानन्दनाथ रूप गुरु हैं, उन्हें नमस्कार है ।}

{२} वामश्रोत्ररूपशंखिन्यात्मने विमर्शानन्दनाथाय नमः ।

{३} जिह्वा {रंध्र} रूप सरस्वत्यात्मने अनन्तानन्दनाथाय नमः ।

{४} दक्षनेत्र {रंध्र} रूप पूषात्मने श्रीज्ञानानन्दनाथाय नमः ।

{५} वामनेत्र {रंध्र} रूपगान्धार्यात्मने श्रीसत्यानन्दनाथाय नमः ।

{६} छत्ररूप {रंध्र} कुह्वात्मने श्रीपूर्णानन्दनाथाय नमः

{७} दक्षनासा रूप {रंध्र} पिंगलात्मने {नाड़ी} स्वभावानन्दनाथाय नमः ।

{८} वामनासारूप इडात्मने प्रतिभानन्दनाथाय नमः

{९} पायुरूपालम्बुसात्मने सहजानन्दनाथाय नमः ।

{इति तत्तत् स्थानानि संस्पर्श्य}

{इस प्रकार इन–इन स्थानोंको संस्पर्श करें}

{सूत्र ३ एवं ४}

{३} नवचक्ररूपं श्रीचक्रम् ।

{४} वाराहीपितृरूपा, कुरुकुल्ला वलिदेवता माता

{नवचक्र रूप देह ही श्रीचक्रराज है, वाराही पिता स्वरूप हैं एवं वलिदेवता कुरुकुल्लादेवी माता स्वरूपा हैं}

{प्रयोग}

नवचक्ररूपश्रीचक्रात्मने देहाय नमः

{नवचक्ररूप श्रीचक्र स्वरूप इस देहको नमस्कार है ।}

पितृरूप मांसाद्यवयवात्मने वाराह्यै नमः

{पितृ रूप मांसादि अवयव स्वरूप भगवती वाराहीको नमस्कार है}

मातृरूप अस्थ्याद्यवयवात्मने बलिदेवतायै कुरुकुल्लायै नमः ।

{मातृ रूप अस्थि आदि अवयवोंकी स्वरूपभूता भगवती बलिदेवता कुरुकुल्लादेवीको नमस्कार है ।}

{इति त्रिर्व्यापकं कृत्वा}

{इसी प्रकार तीन बार सम्पूर्ण शरीरमें व्यापक रूपसे ऐसी भावना करें}

सूत्र {५}

पुरुषार्थास्सागराः

{चारों पुरुषार्थ ही मणिद्वीप धामको घेरे चार सागर हैं }

{प्रयोग}

{१} *देहपश्चाद्भागरूपधर्मात्मने इक्षुसागराय नमः ।*

{देहकी पीठादि पीछेका भाग धर्मस्वरूप इक्षुसागर है, उसे नमस्कार है}

{२} *देहदक्षिणभागरूपार्थात्मने सुरासागराय नमः ।*

{देहका दाहिना भाग अर्थस्वरूप सुरासागर है, उसे नमस्कार है}

{३} *देहप्राग्भागरूपकामात्मने घृतसागराय नमः*

{देहका आगेका भाग कामस्वरूप घृतसागर है, उसे नमस्कार है }

{४} *देहोदग्भागरूपमोक्षात्मने क्षीरसागराय नमः*

{देहका ऊपरका भाग मोक्षस्वरूप क्षीरसागर है, उसे नमस्कार है}

सूत्र {६}

देहात्मने नवरत्नद्वीपाय नमः

{दिह रूप नवरत्नद्वीप {मणिद्वीप}श्रीधामको नमन ।

इति त्रिर्व्यापकं कृत्वा

{इस प्रकार तीन बार सम्पूर्ण शरीरमें इस भावनाको व्याप्त करें }

{प्रयोग विधि}

१} *मांसात्मने पुष्परागरत्नद्वीपाय नमः ।*

{मांस रूप पुष्पराग रत्नद्वीप को नमस्कार}

२} *रोमात्मने नीलरत्नद्वीपाय नमः ।*

{रोम रूप नीलरत्न द्वीपको नमस्कार}

३} *त्वगात्मने वैदूर्यरत्नद्वीपाय नमः ।*

{त्वचारूप वैदूर्यरत्न द्वीपको नमस्कार}

४} *रुधिरात्मने विद्रुमरत्नद्वीपाय नमः ।*

{रुधिर रूप विद्रुम रत्न द्वीपको नमन}

५} *शुक्रात्मने मौक्तिकरत्नद्वीपाय नमः ।*

{शुक्ररूप मौक्तिक रत्न द्वीपको नमन}

६} *मज्जात्मने मरकतरत्नद्वीपाय नमः ।*

{मज्जारूप मरकत रत्न द्वीपको नमन}

७} *अस्थ्यात्मने वज्ररत्नद्वीपाय नमः ।*

{अस्थिरूप हीरा रत्न द्वीपको नमस्कार}

८} *मेद आत्मने गोमेदकरत्नद्वीपाय नमः ।*

{मेदरूप गोमेदकरत्नद्वीप को नमन}

९} *ओजात्मने पद्मरागरत्नद्वीपाय नमः ।*

{ओज स्वरूप पद्मराग रत्नद्वीपको नमन}

सूत्र {७}

त्वगादिसप्तधातुरोमसंयुक्त :

{त्वचादि सातों धातुएँ रोम सहित चक्रेश्वरी अधिदेवता रूप हैं}

{प्रयोग}

१} *मांसाधिदेवतायै कालचक्रेश्वर्यै नमः*

{मांसकी अधिदेवता कालचक्रेश्वरीको नमस्कार}

२} *रोमाधिदेवतायै रुद्रचक्रेश्वर्यै नमः*

{रोमकी अधिदेवता रुद्र चक्रेश्वरीको नमस्कार}

३} *त्वगधिदेवतायै मातृचक्रेश्वर्यै नमः*

{त्वचाकी अधिदेवता मातृचक्रेश्वरीको नमस्कार}

४} *रुधिराधिदेवतायै रत्नचक्रेश्वर्यै नमः*

{रुधिरकी अधिदेवता रत्नचक्रेश्वरीको नमस्कार}

५} *शुक्राधिदेवतायै दशाचक्रेश्वर्यै नमः*

{शुक्रकी अधिदेवता दशाचक्रेश्वरीको नमस्कार}

६} *मज्जाधिदेवतायै गुरुश्चक्रेश्वर्यै नमः*

{मज्जाकी अधिदवेता गुरुचक्रेश्वरीको नमस्कार}

७} *अस्थ्यधिदेवतायै तत्वचक्रेश्वर्यै नमः*

{अस्थिकी अधिदेवता तत्वचक्रेश्वरीको नमन}

८} *मेदोऽधिदेवताये ग्रहचक्रेश्वर्यै नमः*

मेदकी अधिदेवता ग्रहचक्रेश्वरी को नमन}

९} *ओजोऽधिदेवतायै मूर्त्तिचक्रेश्वर्यै नमः*

{ओजकी अधिदेवता मूर्त्ति चक्रेश्वरीको नमस्कार}

{मतान्तरमें इन चक्रेश्वरियोंके निम्न नाम भी हैं }

त्रिपुरा, त्रिपुरेशी, त्रिपुरसुन्दरी, त्रिपुरवासिनी, त्रिपुराश्री, त्रिपुरमालिनी, त्रिपुरासिद्धा, त्रिपुराम्बा एवं महात्रिपुरसुन्दरी ।

सूत्र {८}

संकल्पाः कल्पतरवः तेजः कल्पकोद्यानम्

{अपने संकल्प ही कल्पतरु वृक्ष है और अपना तेज कल्पतरु वाटिका है}

{प्रयोग}

संकल्पात्मभ्यः कल्पतरुभ्यो नमः तेज आत्मने कल्पकोद्यानाय नमः

{अपने संकल्पोंको कल्पतरु वृक्ष मानकर नमन करें, अपने तेज–समूहको कल्पतरु वाटिका मानकर नमस्कार करें}

सूत्र {९}

रसनया भाव्यमाना मधुराम्लतिक्तकटुकषायलवणरसाः ।

{रसनासे अनुभव होने वाले मधुर, अम्ल, तिक्त, कटु, कषाय, लवण इन छः रसोंको ही छः ऋतु जाने}

{प्रयोग}

१} *मधुररसात्मने वसन्तर्तवे नमः*

{मधुर रस रूप वसन्त ऋतुको नमस्कार है}

२} *अम्लरसात्मने ग्रीष्मर्तवे नमः*

{अम्ल रस रूप ग्रीष्म ऋतुको नमस्कार है}

3} *तिक्तरसात्मने वर्षर्तवे नमः*

{तिक्त रस रूप वर्षा ऋतुको नमस्कार है}

४} *कटुरसात्मने शरदृतवे नमः*

{कटु रस रूप शरद ऋतुको नमस्कार है}

५} *कषायरसात्मने हेमन्तर्तवे नमः*

{कषाय रस रूप हेमन्त ऋतुको नमस्कार है}

६} *लवणरसात्मने शिशिरर्तवे नमः*

{लवण रस रूप शिशिर ऋतुको नमस्कार है}

सूत्र {९}{अ}

इन्द्रियात्मभ्योऽश्वेभ्यो नमः ।

इन्द्रियार्थात्मभ्यो गजेभ्यो नमः ।।

करुणात्मिकायैतोयपरिखायै नमः ।

ओजःपुंजात्मने माणिक्यमंडपाय नमः ।।

{इन्द्रियाँ ही भगवतीके रथके अश्व हैं एवं इन्द्रियोंके अर्थ विषय भगवतीके हाथी हैं। अपने भीतर जो करुणा उत्पन्न होती हैं, वह जलसे भरी खाई {परिखा} है और जो ओजसमूह है वह माणिक्यमंडप है}

सूत्र {१०}

ज्ञानमर्ध्यम् ज्ञेयं हविः ज्ञाता होता ज्ञातृज्ञानज्ञेयानां

अभेदभावनं श्रीचक्रपूजनम् ।

{ज्ञान अर्घ्य है, ज्ञेय हवि है, ज्ञाता होता है तथा ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेयमें जो अभेद भावना करना है, वही श्रीचक्रराज पूजन है}

{प्रयोग}

ज्ञानात्मने विशेषार्घ्याय नमः

{अपने ज्ञानको ही विशेष अर्घ्य समझें}

ज्ञेयात्मने हविषे नमः

{ज्ञेयको हविष्य सामग्री माने}

ज्ञात्रात्मने होत्रे नमः

{ज्ञाताको होम करने वाला होता समझे}

चिदात्मने श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै ममः

{चिदात्मा रूपमें भगवती महात्रिपुरीसुन्दरीको ही जाने}

इस प्रकार अनुसन्धानपूर्वक अपने नाम रूपकी विलुप्तताका अनुभव करे एवं चिन्मात्र रूपताका अनुभव करता हुआ एक क्षण शान्त विश्राम करे तत्पश्चात् पञ्चदश नित्याओं का यजन करे।

हृदि हस्तं निधाय {अपने हाथको हृदयमें रखें}

चत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मने प्रतिपत्तिथिरूप कामेश्वरीनित्यायै नमः

{चौदहसौ चालीस श्वासरूप प्रतिपदा तिथि स्वरूप भगवती कामेश्वरी नित्याको प्रणाम}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मने द्वितीयातिथिरूप भगमालिनीनित्यायै नमः

{इसके पश्चात्की चौदहसौ चालीस श्वासरूप द्वितीया तिथि स्वरूप भगमालिनी नित्याको प्रणाम}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मने तृतीयातिथिरूप नित्यक्लिन्नानित्यायै नमः

{इसके पश्चात्की चौदहसौ चालीस श्वास रूप तृतीया तिथि रूप नित्यक्लिन्ना नित्याको प्रणाम}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मनेचतुर्थीतिथिरूप भेरुण्डानित्यायै नमः

{इसके बादकी चौदहसौ चालीस श्वास रूप चतुर्थी तिथि रूप भेरुण्डा नित्याको नमस्कार}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मने पंचमीतिथिरूप बन्हिवासिनीनित्यायै नमः

{इसके पश्चात्की चौदहसौ चालीस श्वास रूप पंचमी तिथि रूप बन्हिवासिनी नित्याको नमन}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मने षष्ठीतिथिरूप महावज्रेश्वरीनित्यायै नमः

{इसके पश्चात्की चौदहसौ चालीस श्वास रूप षष्ठी तिथि रूप महावज्रेश्वरी नित्याको नमन}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मने सप्तमीतिथिरूप शिवदूतीनित्यायै नमः

{इसके पश्चात की चौदहसौ चालीस श्वास रूप सप्तमी तिथि रूप शिवदूती नित्याको नमन}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मनेअष्टमीतिथिरूप त्वरितानित्यायै नमः

{इसके पश्चात्की चौदहसौ चालीस श्वास रूप अष्टमी तिथि रूप त्वरिता नित्याको नमन}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मने नवमीतिथिरूप कुलसुन्दरीनित्यायै नमः

{इसके पश्चात्की चौदहसौ चालीस श्वास रूप नवमी तिथि रूप कुलसुन्दरी नित्याको नमन}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मनेदशमीतिथिरूप नित्यानित्यायै नमः

{इसके पश्चात्की चौदहसौ चालीस श्वास रूप दशमी तिथि रूप नित्या नित्याको नमन}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मनेएकादशीतिथिरूप नीलपताका नित्यायै नमः

{इसके पश्चात्की चौदहसौ चालीस श्वास रूप एकादशी तिथि रूप नीलपताका नित्याको नमन}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मनेद्वादशीतिथिरूप विजयानित्यायै नमः

{इसके पश्चात्की चौदहसौ चालीस श्वासात्मक द्वादशी तिथि रूप विजया नित्याको नमस्कार}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मने त्रयोदशीतिथिरूप सर्वमंगलानित्यायै नमः

{इसके पश्चात्की चौदहसौ चालीस श्वासात्मक त्रयोदशी तिथि रूप सर्व मंगला नित्याको नमस्कार}

तदुत्तर चत्वारिशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मने चतुर्दशीतिथिरूप ज्वालामालिनीनित्यायै नमः

{इसके पश्चात्की चौदहसौ चालीस श्वासात्मक चतुर्दशी तिथि रूप ज्वालामालिनी नित्याको मेरा नमन}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मनेपौर्णमासीतिथिरूप चित्रानित्यायै नमः

{इसके पश्चात्की चौदहसौ चालीस श्वासात्मक पौर्णमासी तिथि रूप चित्रा नित्याको मेरा नमन}

सूत्र {११}

नियतिश्रृंगारादयो रसा अणिमादिसिद्धयः कामक्रोधलोभमोहमद –मात्सर्यपुण्यपापमय्यो ब्राह्मयाद्यष्टशक्तयः

{प्रकृतिमें श्रृंगार आदि जो रस हैं, वे अणिमादि सिद्धियाँ हैं एवं काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, पाप, पुण्यमयी ब्राह्मी आदि आठ शक्तियाँ हैं ।

{प्रयोग}

चतुरस्राद्यरेखायै नमः इति वक्ष्यमाणस्थानेषु व्यापकं न्यस्य ।

{चतुरस्रकी आद्यरेखाको नमस्कार, इस प्रकार कहे गये स्थानोंमें व्यापक रूपमें न्यास करें ।

दक्षांसपृष्ठरूपशान्तरसात्मने अणिमासिद्धयें नमः ।

{दाहिने कंधेके पृष्ठदेश रूप शान्त रसात्मक अणिमा सिद्धिको नमस्कार}

दक्षपाण्यंगुल्यग्ररूपाद्भुतरसात्मने लघिमा सिद्धयै नमः ।

{दक्षिण हाथकी अँगुलियोंके अग्रभाग रूप अद्भुतरसात्मक लघिमा सिद्धिको मेरा नमस्कार}

दक्षस्फिग्रूपकरुणरसात्मने महिमासिद्धयें नमः ।

{दक्षिण स्फिग रूप करुणरसात्मक महिमासिद्धिको नमस्कार}

दक्ष पादांगुल्यग्ररूपवीररसात्मने ईशित्वसिद्धयै नमः ।

{दक्षिण पैरोंकी अंगुलिके आगेके भाग रूप वीर रसात्मक ईशित्व सिद्धिको मेरा नमस्कार}

वामपादांगुल्यग्ररूपहास्यरसात्मने वशित्वसिद्धयें नमः ।

{वाम पैरकी अँगुलियोंके आगेके भाग रूप हास्य रसात्मक वशित्व सिद्धिको नमन}

वामस्फिग्रूपवीभत्सरसात्मने प्राकाम्यसिद्धयें नमः ।

{वाम स्फिग् रूप वीभत्स रसात्मक प्राकाम्य सिद्धिको मेरा नमस्कार है }

वामपाण्यंगुल्यग्ररूपरौद्ररसात्मने भुक्तिसिद्धयें नमः ।

{बायें हाथकी अँगुलियोंके अग्रभाग रूप रौद्ररसात्मक भुक्ति सिद्धिको नमन}

वामांसपृष्ठरूपभयानकरसात्मने इच्छासिद्धयें नमः ।।

{बायें कंधेके पीछेके भाग रूप भयानक रसात्मक इच्छा सिद्धिको मेरा नमस्कार है}

चूलीमूलरूपश्रृंगाररसात्मने प्राप्तिसिद्धयें नमः ।

{शिखा मूल रूप श्रृंगार रसात्मक प्राप्ति सिद्धिको मेरा नमस्कार है}

चूलीपृष्ठरूपनियत्यात्मने सर्वकामसिद्ध्यै नमः ।
{शिखाके पृष्ठ रूप {नियति} प्रकृत्यात्मक सर्वकाम सिद्धिको मेरा नमन}
चतुरस्र मध्यरेखायै नमः इति तदन्तर्व्यापकं न्यस्य
{चतुरस्रकी मध्य रेखाको नमस्कार, इस प्रकार अपने भीतर उसे व्यापक अनुभव करते हुए न्यास करें} –
पादांगुष्ठद्वयरूपकामात्मने ब्राह्म्यै नमः
{दोनों पैरोंके दोनों अँगूठोंके रूपमें कामात्मक ब्राह्मी शक्तिको नमस्कार}
दक्षपार्श्वरूपक्रोधात्मने माहेश्वर्यै नमः
{दाहिने भागके रूपमें क्रोधात्मक माहेश्वरी शक्तिको नमन}
मूर्धभागरूपलोभात्मने कौमार्यै नमः
{मूर्ध भाग रूप लोभात्मक कुमारी शक्तिको मेरा नमन}
वामपार्श्वरूपमोहात्मने वैष्णव्यै नमः
{बायें भाग रूप मोहात्मा वैष्णवी शक्तिको मेरा नमस्कार}
वामजानुरूपमदात्मने बाराह्यै नमः
{बायीं जंधा रूप मदात्मक वाराही शक्तिको नमस्कार}
दक्षजानुरूपमात्सर्यात्मने इन्द्राण्यै नमः ।
{दक्षजानु रूप {दाहिनी जंघा रूप}मात्सर्यात्मक इन्द्राणीशक्तिको नमन}
दक्षबहिरंसरूपपुण्यात्मने चामुण्डायै नमः ।
{दाहिनी बाहरी भाग रूप पुण्यात्मक चामुण्डादेवीको नमस्कार}
वामबहिरंसरूपपापात्मने महालक्ष्म्यै नमः ।
{बायें बाहिरी स्कंध रूप पापात्मक महालक्ष्मीदेवीको नमस्कार}

सूत्र {१२}

आधार नवकं मुद्राशक्तयः
{मूलाधार चक्रादि नौ चक्र, नौ मुद्रा शक्तियाँ हैं}
चतुरस्रान्त्यरेखायै नमः इति तदन्तर्व्यापकं न्यस्य
{चतुरस्रकी अन्तिम रेखाको नमस्कार । इस प्रकार अपने भीतर उसे व्यापक मानते हुए न्यास करें}
पादांगुष्ठद्वयरूपाधस्सहस्रदलकमलात्मने सर्वसंक्षोभिणीमुद्रायै नमः ।
{पैरोंके दोनों अँगूठोंके रूपमें अधः, सहस्र दल कमलात्मक सर्वसंक्षोभिणी मुद्राको मेरा नमस्कार है}
दक्षपार्श्वरूपमूलाधारात्मने सर्वविद्राविणीमुद्राशक्त्यै नमः ।
{दाहिने पक्ष रूप मूलाधारात्मक सर्वविद्राविणी मुद्राशक्तिको नमस्कार}

मूर्धरूपस्वाधिष्ठानात्मने सर्वाकर्षिणीमुद्राशक्त्यै नमः ।

{मूर्धरूपमें स्वाधिष्ठानात्मक सर्वाकर्षिणी मुद्राशक्तिको मेरा नमस्कार}

वामपार्श्वरूपमणिपूरात्मके सर्ववशंकरीमुद्राशक्त्यै नमः ।

{बायें भाग रूप मणिपूरात्मने सर्ववशंकरी मुद्राशक्तिको मेरा नमस्कार}

वामजानुरूपानाहतात्मने सर्वोन्मादिनीमुद्राशक्त्यै नमः

{वाम जंधा एवं पिण्डलीके मध्य भाग रूप अनाहतात्मक सर्वोन्मादिनी मुद्राशक्तिको मेरा नमस्कार}

दक्षजानुरूपविशुद्ध्यात्मने सर्वमहांकुशामुद्राशक्त्यै नमः।

{दाहिनी जानुरूप विशुद्ध्यात्मक सर्वमहांकुशा मुद्राशक्तिको नमन}

दक्षोरुरूपइन्द्रयोन्यात्मने सर्वखेचरीमुद्राशक्त्यै नमः ।

{दाहिनी जंघा रूप इन्द्रयोन्यात्मक सर्वखेचरी मुद्राशक्तिको मेरा नमस्कार है}

वामोरुरूपआज्ञात्मने सर्वबीजमुद्राशक्त्यै नमः

{वामजंघारूप आज्ञाचक्रात्मक सर्वबीज मुद्राशक्तिको मेरा नमस्कार}

द्वादशान्तरूपोर्ध्वसहस्रदलकमलात्मने सर्वयोनिमुद्राशक्त्यै नमः ।

{द्वादशान्त रूप ऊर्ध्व सहस्रदल कमलात्मक सर्वयोनि मुद्राशक्तिको नमस्कार}

पादांगुष्ठरूपाधारनवकात्मने सर्वत्रिखण्डामुद्रायै नमः ।

{पादांगुष्ठ रूप आधार नवकात्मक सर्वत्रिखण्डा मुद्राको मेरा नमस्कार}

हृद्रूप त्रैलोक्यमोहनचक्रेश्वर्यै त्रिपुरायै नमः ।

{हृदय रूप त्रैलोक्यमोहन चक्रेश्वरी भगवती त्रिपुराको मेरा नमस्कार}

इति तत्तत्स्थानानि स्पृष्ट्वा एतास्सर्वास्वात्माभिन्नत्वेन विभाव्य आत्मनः अपरिच्छिन्नत्वं भावयेत् ।

{इस प्रकार उन–उन स्थानोंको स्पर्श करते हुए इन सभीको अपनी आत्मासे अभिन्न मानते हुए अपनेको अपरिच्छिन्न अनुभव करें ।}

प्रकटयोगिनीरूपस्वात्मने अणिमासिद्ध्यै नमः ।

{अपनी आत्माके रूपमें प्रकट योगिनी रूप अणिमा सिद्धिको नमस्कार}

अपरिच्छिन्नस्वात्मात्मने सर्वसंक्षोभिणीमुद्रायै नमः

इति प्रयोगपूर्वकं वा विभावयेत् ।

{अपनी आत्माके अपरिच्छिन्नरूप सर्वसंक्षोभिणी मुद्राको नमस्कार । इस प्रकार प्रयोगपूर्वक भावना करें}

सूत्र {१३}

पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाश श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थानि मनोविकारः कामाकर्षिणि आदि षोड़शशक्तयः ।।

{पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, कान, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, एवं वाक्, हाथ, पैर, पायु, उपस्थादि, मनोविकार, कामाकर्षिणी आदि सोलह शक्तियाँ हैं}

{प्रयोग विधि}

षोड़शदलपद्माय नमः इति तदन्तर्व्यापकं न्यस्य ।

{इस प्रकार षोड़शदल पद्मोंको नमस्कार करता हुआ अपने भीतर उसे व्यापक समझे एवं न्यास करे}

दक्षश्रोत्रपृष्ठपृथिव्यात्मने कामाकर्षिणीनित्याकलायै नमः

{दाहिने कानके पीछेके हिस्सेके रूपमें पृथ्वी स्वरूप कामाकर्षिणी नित्याकलाको नमन}

दक्षांसरूप वार्यात्मनै बुद्ध्याकर्षिणी नित्याकलायै नमः ।

{दाहिने स्कन्धरूप जलात्मक बुद्धयाकर्षिणी नित्याकलाको नमस्कार}

दक्षकूर्पररूपतेजात्मने अहंकाराकर्षिणीनित्याकलायै नमः

{दाहिने कूर्पर रूप तेजात्मक अहंकाराकर्षिणी नित्याकलाको नमस्कार}

दक्षकरपृष्ठरूपवाय्वात्मने शब्दाकर्षिणीनित्याकलायै नमः ।

{दाहिने कर पृष्ठ रूप वायुस्वरूप शब्दाकर्षिणी नित्याकलाको मेरा नमस्कार}

दक्षोरुरूपाकाशात्मने स्पर्शाकर्षिणीनित्याकलायै नमः

{दाहिनी जाँध रूप आकाशात्मक स्पर्शाकर्षिणी नित्या कलाको नमन}

दक्षजानुरूपश्रोत्रात्मने रूपाकर्षिणीनित्याकलायै नमः

{दाहिनी जाँघरूप श्रोत्रात्मक रूपाकर्षिणी नित्याकलाको नमस्कार है }

दक्षगुल्फरूपत्वगात्मने रसाकर्षिणीनित्याकलायै नमः ।

{दाहिनी ऐंडीके ऊपरकी गाँठरूप त्वगात्मक रसाकर्षिणी नित्याकलाको नमन}

दक्षपादतलरूपचक्षुरात्मने गंधाकर्षिणीनित्याकलायै नमः

{दक्षिण पादतल {पगथली} रूप चक्षुआत्मक गन्धाकर्षिणी नित्याकलाको नमस्कार}

वामपादतलरूपजिह्वात्मने चित्ताकर्षिणीनित्याकलायै नमः

{बायीं पगथली रूप जिह्वात्मक चित्ताकर्षिणी नित्याकलाको नमस्कार}

वामगुल्फरूपघ्राणात्मने धैर्याकर्षिणी नित्याकलायै नमः ।

{वाम ऐंडीके ऊपरकी गाँठ रूप घ्राणात्मक धैर्याकर्षिणी नित्या कलाको नमन}

वामजानुरूपवागात्मने स्मृत्याकर्षिणी नित्याकलायै नमः ।

{वाम पिंडलीके ऊपर एवं जाँघके नीचेके भागरूप वाक् स्वरूप स्मृत्याकर्षिणी नित्याकलाको मेरा नमस्कार}

वामोरुरूपपाण्यात्मने नामाकर्षिणीनित्याकलायै नमः ।
{वाम जंघारूप हस्तात्मक नामाकर्षिणी नित्याकलाको मेरा नमस्कार है}
वामकरपृष्ठरूपपादात्मने बीजाकर्षिणी नित्याकलायै नमः ।
{बायें हाथके पीछेके भाग रूप पादात्मक बीजाकर्षिणी नित्याकलाको मेरा नमस्कार है}
वामकूर्पररूपपाय्वात्मने आत्माकर्षिणीनित्याकलायै नमः ।
{बायें कूर्पर रूप पायु इन्द्रियात्मक आत्माकर्षिणी नित्याकलाको मेरा नमन}
वामांसरूपोपस्थात्मने अमृताकर्षिणीनित्याकलायै नमः
{वाम स्कन्धरूप उपस्थात्मक अमृताकर्षिणी नित्याकलाको मेरा नमन}
वाम श्रोत्रपृष्ठरूपविकृतमन आत्मने शरीराकर्षिणीनित्याकलायै नमः।
{वाम–श्रोत्रके पीछेके भागके रूपमें विकृत मन स्वरूप शरीराकर्षिणी नित्याकलाको मेरा नमस्कार है}
हृद्रूपसर्वाशापरिपूरकचक्रेश्वर्यै त्रिपुरेश्वर्यै नमः ।
{हृदय रूप सर्वाशापरिपूरक चक्रेश्वरी भगवती त्रिपुरेशीको मेरा नमस्कार है}
गुप्तयोगिनीरूपस्वात्मने लघिमासिद्ध्यै नमः ।
{गुप्तयोगिनीरूप अपनी आत्मास्वरूप लघिमा सिद्धिको मेरा नमस्कार है}
अपरिच्छिन्नरूपस्वात्मात्मने सर्वविद्राविणीमुद्रायै नमः ।
{अपनी स्वात्मा ही अपरिच्छिन्नस्वरूप सर्वविद्राविणी मुद्राशक्तिको नमस्कार है}

सूत्र {१४}

वचनादानगमनविसर्गानन्दहानोपादानोपेक्षारूपबुद्धयो अनंगकुसुमाद्यष्टौ ।।

{वचन, आदान, गमन, विसर्ग, आनन्द, हान, उपादान, उपेक्षा रूप बुद्धियाँ अनंग कुसुमादि आठ शक्तियाँ हैं}

{प्रयोग विधि}

अष्टदलपद्माय नमः इति तदन्तर्व्यापकं न्यस्य
{आठ दलके पद्मको नमस्कार, इस प्रकार उसे अन्तर्में व्यापक देखते हुए न्यास करें }
दक्षशंख {कपालास्थि} रूप वचनात्मने अनंगकुसुमायै नमः
{दक्षिण कपालास्थि वचनात्मक अनंगकुसुमा शक्तिको नमस्कार}
दक्षजत्रुरूप {स्कंध संधि} आदानात्मने अनंगमेखलायै नमः ।
{दक्षिण कंधेकी संधि रूप आदानात्मक अनंगमेखलादेवीको नमस्कार}
दक्षोरुरूपगमनात्मने अनंगमदनायै नमः ।
{दक्षिण जंधा रूप गमनात्मक अनंगमदनादेवीको मेरा नमस्कार है}

दक्षगुल्फरूपविसर्गात्मने अनंगमदनातुरायै नमः ।

(दक्षिण गुल्फरूप विसर्गात्मक अनंगमदनातुरा देवीको नमस्कार)

वामगुल्फरूपआनन्दात्मने अनंगरेखायै नमः ।

{वाम गुल्फ {ऐडीकी ऊपरकी गाँठ} रूप आनन्दात्मक अनंगरेखा शक्तिको नमस्कार}

वामोरुरूपहानाख्यबुद्ध्यात्मने अनंगवेगायै नमः ।

{वाम जंघा रूप हानाख्या बुद्ध्यात्मक अनंगवेगादेवीको मेरा नमस्कार}

वामजत्रुरूपोपादानाख्यबुद्ध्यात्मने अनंगांकुशायै नमः ।

{वाम हँसुली रूप उपादानाख्य बुद्ध्यात्मक अनंगांकुशादेवीको नमस्कार}

वामशंखरूपोपेक्षाख्यबुद्ध्यात्मने अनंगमालिन्यै नमः ।

{वाम शंख रूप उपेक्षाबुद्धि आत्मक अनंगमालिनीदेवीको मेरा नमन}

हृद्रूपसंक्षोभिणीचक्रेश्वर्यै त्रिपुरसुन्दर्यै नमः ।

{हृदय रूप संक्षोभिणी चक्रेश्वरी भगवती त्रिपुरसुन्दरीको मेरा नमस्कार}

गुप्ततरयोगिनीरूपस्वात्मात्मने महिमासिद्ध्यै नमः ।

{गुप्ततर योगिनी रूप अपनी आत्मा ही महिमासिद्धि स्वरूप है, उसे नमस्कार}

अपरिच्छिन्नरूपस्वात्मात्मने सर्वाकर्षिणीमुद्रायै नमः ।

{अपरिच्छिन्न रूपमें अपनी आत्मा ही सर्वाकर्षिणी मुद्राशक्ति है, उसे नमस्कार}

सूत्र {१५}

अलम्बुषाकुहूर्विश्वोदरावारुणी हस्तिजिह्वायशोवतीपयस्विनीगान्धारी पूषाशंखिनीसरस्वतीइड़ापिंगलासुषुम्नाचेति
चतुर्दश नाड्यः सर्वसंक्षोभिणी आदि चतुर्दश शक्तयः ।।

{अलंबुसा, कूहू, विश्वोदरा, वारुणी, हस्तिजिह्वा, यशोवती, पयस्विनी, गान्धारी, पूषा, शंखिनी, सरस्वती, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना – ये चौदह नाड़ियाँ सर्वसंक्षोभिणी आदि चौदह शक्तियाँ हैं । }

चतुर्दशार चक्राय नमः इति तदन्तर्व्यापकं न्यस्य

{चतुर्दशार चक्रको नमस्कार । इस प्रकार उसे अपने अन्तरमें व्यापक समझता हुआ न्यास करे ।}

ललाटमध्यभागरूपअलम्बुसात्मने सर्वसंक्षोभिणीशक्त्यै नमः

{ललाटके मध्य भाग रूप अलम्बुसात्मक सर्वसंक्षोभिणी शक्तिको मेरा नमन}

ललाटदक्षभागरूपकुहात्मने सर्वविद्राविणीशक्त्यै नमः ।

{ललाटके दक्षिण भाग रूप कुहू नाड़ी स्वरूप सर्वविद्राविणी शक्तिको नमस्कार}

दक्षगण्डरूपविश्वोदरात्मने सर्वाकर्षिणीशक्त्यै नमः ।

{दाहिने गाल {गण्ड} रूप विश्वोदरा नाडी स्वरूप सर्वाकर्षिणी शक्तिको मेरा नमस्कार है}

दक्षांसरूपवारुण्यात्मने सर्वाह्लादिनीशक्त्यै नमः ।

{दाहिने स्कन्धरूप वारुणी स्वरूपा सर्वाह्लादिनी शक्तिको मेरा नमस्कार}

दक्षपार्श्वरूपहस्तिजिह्वात्मने सर्वसंमोहिनीशक्त्यै नमः ।

{दाहिने बगलके रूपमें हस्तिजिह्वास्वरूपिणी सर्वसंमोहिनी शक्तिको मेरा नमस्कार}

दक्षोरुरूपयशोवत्यात्मने सर्वस्तंभिनीशक्त्यै नमः ।

{दाहिनी ऊरु रूप यशोवती नाड़ी स्वरूपिणी सर्वस्तम्भिनी शक्तिको मेरा नमन}

दक्षजंघारूपपयस्विन्यात्मने सर्वजृम्भिणीशक्त्यै नमः ।

{दाहिनी जंघारूप पयस्विनी नाड़ीरूप सर्वजृम्भिणी शक्तिको मेरा नमन}

वामजंधारूपगान्धार्यात्मने सर्ववशंकरीशक्त्यै नमः ।

{वाम जंघारूप गान्धारी नाड़ी स्वरूपा सर्ववशंकरी शक्तिको नमन}

वा मोरुरूपपूषात्मने सर्वरञ्जिनीशक्त्यै नमः ।

{वाम ऊरुरूपा पूषास्वरूपा सर्वरञ्जिनी शक्तिको नमन}

वामपार्श्वरूपशंखिन्यात्मने सर्वोन्मादिनीशक्त्यै नमः ।

{वाम पार्श्वरूप शंखिनी स्वरूपा सर्वोन्मादिनी शक्तिको मेरा नमस्कार है }

वामांसरूपसरस्वत्यात्मने सर्वार्थसाधिनीशक्त्यै नमः ।

{वाम भाग रूप सरस्वती नाड़ी स्वरूपा सर्वार्थसाधिनी शक्तिको मेरा नमस्कार}

वामगंडरूपेड़ात्मने सर्वसंपत्तिपूरणीशक्त्यै नमः ।

{बायें गाल रूप इड़ा नाड़ी स्वरूपा सर्वसंपत्तिपूरिणी शक्तिको मेरा नमस्कार है}

ललाटवामभागरूपपिंगलात्मने सर्वमंत्रमयीशक्त्यै नमः

{ललाटके बायें भाग रूप पिंगला नाड़ी रूपा सर्व मंत्रमयी शक्तिको नमन}

ललाटपृष्ठभागरूपसुषुम्नात्मने सर्वद्वन्द्वक्षयंकरीशक्त्यै नमः ।

{ललाटके पीछेके भाग रूप सुषुम्ना नाड़ी स्वरूपा सर्वद्वन्द्वक्षयकारी शक्तिको नमन}

हृद्रूपसर्वसौभाग्यदायकचक्रेश्वर्यै त्रिपुरवासिन्यै नमः ।

{हृदय रूप सर्वसौभाग्यदायक चक्रेश्वरी त्रिपुरवासिनीदेवीको नमन}

सम्प्रदाययोगिनीरूपस्वात्मात्मने ईशित्वसिद्ध्यै नमः ।

{सम्प्रदाय योगिनी रूप अपनी आत्मा ही ईशित्व सिद्धि है, उसे नमन}

अपरिच्छिन्नरूपस्वात्मात्मने सर्ववशंकरीविद्यायै नमः ।

{अपरिच्छिन्न रूप अपनी आत्मा ही सर्ववशंकरी विद्या है, उसे नमस्कार}

सूत्र {१६}

प्राणापानव्यानोदानसमाननागकूर्मकृकरदेवदत्तधनञ्जयादि दशवायवः सर्वसिद्धिप्रदादिबहिर्दशारदेवताः ।।

{प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त धनञ्जय आदि दस प्रकारके प्राण ही सर्वसिद्धिप्रद बहिर्दशार देवता हैं }

बहिर्दशार चक्राय नमः इति व्यापकं न्यस्य

{बहिर्दशार चक्रको नमस्कार । इस प्रकार उसे सर्वव्यापक समझकर न्यास करें।

दक्षाक्षिरूपप्राणात्मने सर्वसिद्धिप्रदादेव्यै नमः ।

{दाहिनी आँखरूप प्राणात्मक सर्वसिद्धिप्रदादेवीको नमस्कार}

नासामूलरूपापानात्मने सर्वसंपत्प्रदादेव्यै नमः ।

{नासिकाके मूलभाग रूप अपानप्राण स्वरूपा सर्वसंपत्प्रदा देवीको नमन।}

वामनेत्ररूपव्यानात्मने सर्वप्रियंकरीदेव्यै नमः ।

{वाम नेत्र रूप व्यानप्राण स्वरूपा सर्वप्रियंकरी देवीको नमस्कार}

कुक्षीशकोणरूपोदानात्मने सर्वमंगलकारिणीदेव्यै नमः ।

{कुक्षीके ईशानकोण रूप उदान प्राणात्मक सर्व मंगलकारिणी देवीको नमस्कार}

कुक्षिवायुकोणरूपसमानात्मने सर्वकामप्रदादेव्यै नमः ।

{कुक्षिके वायुकोण रूप समान प्राणात्मक सर्वकामप्रदादेवीको नमन}

वामजानुरूपनागात्मने सर्वदुःखविमोचिनीदेव्यै नमः ।

{वाम जानु रूप नाग प्राणस्वरूपा सर्वदुःखविमोचिनीदेवीको मेरा नमन}

गुदरूपकूर्मात्मने सर्वमृत्युप्रशमिनीदेव्यै नमः ।

{गुदा रूप कूर्मप्राणस्वरूपा सर्वमृत्युप्रशमिनी देवीको मेरा नमस्कार}

दक्षजानुरूपकृकरात्मने सर्वविघ्नविनाशिनीदेव्यै नमः ।

{दाहिनी जानुरूप कृकरप्राण स्वरूपा सर्वविघ्नविनाशिनी देवीको नमन}

कुक्षिनिऋतिकोणरूपदेवदत्तात्मने सर्वांगसुन्दरीदेव्यै नमः ।

{कुक्षिके नैऋत्यकोण रूप देवदत्त प्राणस्वरूपा सर्वांग सुन्दरी देवीको नमन}

कुक्षिवह्निकोणरूपधनंजयात्मने सर्वसौभाग्यदायिनीदेव्यै नमः ।

{कुक्षिके अग्निकोण रूप धनंजय स्वरूपा सर्वसौभाग्यदायिनी देवीको नमन}

हृद्रूपसर्वार्थसाधकचक्रेश्वर्यै त्रिपुराश्रियै नमः ।

{हृदय रूप सर्वार्थ साधक चक्रेश्वरी त्रिपुराश्रीको नमस्कार}

कुलकौलयोगिनीरूपस्वात्मात्मने वशित्वसिद्ध्यै नमः ।

{कुल कौलिनी योगिनी रूपा अपनी आत्मा ही वशित्वसिद्धि है, उसे नमस्कार}

अपरिच्छिन्नस्वात्मात्मने सर्वोन्मादिनीमुद्रायै नमः ।

{अपरिच्छिन्न अपनी आत्मा ही सर्वोन्मादिनी मुद्रा है, उसे नमस्कार}

सूत्र {१७–१८–१९}

एतद्वायुसंसर्गकोपादिभेदेन रेचकःपाचकश्शोषकोदाहकःप्लावक इति प्राण मुख्यत्वेन पंचधा जठराग्निर्भवति ।।१७।। क्षारकः उद्गारकः क्षोभको जृम्भको मोहकः इति नागप्राधान्येन पञ्चविधास्ते मनुष्याणां देहगाः भक्ष्य भोज्य चोष्यलेह्यपेयात्मकपञ्चविधमन्नं पाचयन्ति ।।१८।। एता दशवह्निकलास्सर्वज्ञाद्या अन्तर्दशारगा देवताः ।।१९।।

{अर्थ}

{ये वायु संसर्ग एवं प्रकोपको प्राप्त करनेके भेदसे रेचक, पाचक, शोषक, दाहक एवं प्लावक इस प्रकार प्राणोंकी प्रमुखतासे पाँच जठराग्नि बन जाते हैं ।।१७।। मनुष्योंके देहमें जाने पर क्षारक, उद्गारक, क्षोभक, जृंभक एवं मोहक इस प्रकारकी प्रधानतापूर्वक ये भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य एवं पेयात्मक पाँच प्रकारके अन्नोंको पचाते हैं ।।१८।। ये दस वह्नि कलायें सर्वज्ञा आदि दस अन्तर्दशार चक्रके दस देवता हैं ।।१९।।

{प्रयोग विधि}

अन्तर्दशारचक्राय नमः इति तदन्तर्व्यापकं न्यस्य

{अन्तर्दशार चक्रको नमस्कार – इस प्रकार उसे अपने भीतर व्यापक जानते हुए न्यास करें }

दक्षनासारूपरेचकाग्न्यात्मने सर्वज्ञादेव्यै नमः ।

{दक्ष नासारूप रेचक अग्नि स्वरूपा सर्वज्ञा देवीको नमस्कार}

दक्षसृक्कि {ओष्ठ प्रान्ते} रूपपाचकाग्न्यात्मने सर्वशक्तिदेव्यै नमः ।

{दक्षिण ओठ प्रान्तमें पाचक अग्नि स्वरूपा सर्वशक्तिदेवीको नमस्कार}

दक्षस्तनरूपशोषकाग्न्यात्मने सर्वैश्वर्यप्रदादेव्यै नमः ।

{दक्ष स्तन भागमें शोषक अग्निस्वरूपा सर्वैश्वर्यप्रदा देवीको नमस्कार}

दक्षवृषणरूपदाहकाग्न्यात्मने सर्वज्ञानमयीदेव्यै नमः ।

{दक्षिण वृषण रूप दाहकाग्नि स्वरूपा सर्वज्ञानमयीदेवीको नमस्कार}

सीविनीरूपप्लवकाग्न्यात्मने सर्वव्याधिविनाशिनीदेव्यै नमः ।

{सीदिनी रूप प्लावकाग्नि स्वरूपा सर्वव्याधिविनाशिनी देवीको नमस्कार}

बामवृषणरूपक्षारकाग्न्यात्मने सर्वाधारस्वरूपादेव्यै नमः ।

{बाम वृषणरूप क्षारक अग्निस्वरूपा सर्वाधारस्वरूपादेवीको नमन}

वामस्तनरूपोद्गारकाग्न्यात्मने सर्वपापहरादेव्यै नमः ।

{वामस्तनरूप उद्गारक अग्नि स्वरूपा सर्वपापहरा देवीको नमस्कार}

बामसृक्किरूप {ओष्ठ प्रान्त} क्षोभकाग्न्यात्मने सर्वानन्दमयीदेव्यै नमः ।
{वाम ओष्ठ प्रान्त रूप क्षोभक अग्निस्वरूपा सर्वानन्दमयी देवीको नमस्कार}
वामनासारूपजृम्भकाग्न्यात्मने सर्वरक्षास्वरूपिणीदेव्यै नमः ।
{वाम नासारूप जृम्भक अग्नि स्वरूपा सर्वरक्षास्वरूपिणी देवीको नमस्कार}
नासाग्ररूपमोहकाग्न्यात्मने सर्वेप्सितफलप्रदादेव्यै नमः ।
{नासिकाके अग्रभाग रूप मोहक अग्निस्वरूपा सर्वेप्सितफलप्रदा देवीको नमस्कार}
हृद्रूपसर्वरक्षाकरचक्रेश्वर्यै त्रिपुरमालिन्यै नमः ।
{हृदय रूप सर्वरक्षाकर चक्रेश्वरी त्रिपुरमालिनी देवीको नमस्कार}
निगर्भयोगिनीरूपस्वात्मात्मने प्राकाम्यसिद्ध्यै नमः ।
{निगर्भ योगिनी रूप स्वात्मास्वरूपा प्राकाम्य सिद्धिको नमस्कार}
अपरिच्छिन्नरूपस्वात्मात्मने सर्वमहांकुशामुद्रायै नमः ।
{अपरिच्छिन्न रूपमें अपनी आत्मा ही सर्वमहांकुशा मुद्राशक्ति है, इन्हें नमस्कार}

सूत्र {२०–२१–२२–२३–२४}

शीतोष्णसुखदुःखेच्छास्सत्वरजस्तमोगुणाः वशिन्यादिशक्त्योऽष्टौ ।।२०।। शब्दादितन्मात्राः पंचपुष्पबाणाः ।।२१।। मन इक्षुधनुः ।।२२।। रागः पाशः ।।२३।। द्वेषोऽकुशः ।।२४।।

{शीत, उष्ण, सुख, दुख, इच्छा, सत्व, रज, तम आदि गुण, वशिन्यादि आठ शक्तियाँ हैं ।।२०।। शब्दादि तन्मात्रा पंच पुष्पबाण हैं ।।२१।। मन इक्षुधनुष है ।।२२।। राग ही पाश आयुध है ।।२३।। द्वेष अंकुश आयुध है।।२४।।}

{प्रयोग विधि}

अष्टकोणचक्राय नमः इति तदन्तर्व्यापकं न्यस्य
{अष्टकोण चक्रको नमस्कार करके उसे अपने भीतर व्यापक अनुभव करता हुआ न्यास करे }
चिबुकदक्षभागरूपशीतात्मने वशिनीवाग्देवतायै नमः
{चिबुकके दक्षिण भाग रूप शीत स्वरूपा वशिनी वाग्देवताको मेरा नमस्कार है}
कण्ठदक्षभागरूपउष्णात्मने कामेश्वरीवाग्देवतायै नमः
{कण्ठके दक्षिण भागरूप उष्ण स्वरूपा कामेश्वरी वाग्देवताको नमन}
हृदयदक्षभागरूप सुखात्मने मोदिनीवाग्देवतायै नमः
{हृदयके दक्षिण भागरूपसुखस्वरूपा मोदिनी वाग्देवताको नमन}

नाभिदक्षभागरूपदुःखात्मने विमलावाग्देवतायै नमः

{नाभि देशके दाहिने भागरूप दुखस्वरूपा विमला वाग्देवताको नमन}

नाभिवामभागरूपइच्छात्मने अरुणावाग्देवतायै नमः

{नाभि देशके वाम भागरूपमें स्थित इच्छास्वरूपा अरुणा वाग्देवताको नमन}

हृदयवामभागरूपसत्त्वगुणात्मने जयिनीवाग्देवतायै नमः

{हृदयके वाम भागरूपमें स्थित सत्त्वगुणस्वरूपा जयिनी वाग्देवताको नमन}

कण्ठवामभागरूपरजोगुणात्मने सर्वेश्वरीवाग्देवतायै नमः

{कण्ठके वाम भाग रूप रजोगुणस्वरूपा सर्वेश्वरी वाग्देवताको नमन}

चिबुकवामभागरूपतमोगुणात्मने कौलिनीवाग्देवतायै नमः

{चिबुकके वाम भाग रूप तमोगुणस्वरूपा कौलिनी वाग्देवताको नमन}

हृद्रूपसर्वरोगहरचक्रेश्वर्यै त्रिपुरासिद्धायै नमः

{हृदय रूप सर्व रोगहर चक्रेश्वरी स्वरूपा त्रिपुरा सिद्धा भगवतीको नमन}

रहस्ययोगिनीरूपस्वात्मात्मने भुक्तिसिद्ध्यै नमः

{रहस्य योगिनी रूपा अपनी स्वात्मा ही भुक्ति सिद्धि है, उसे नमन}

अपरिच्छिन्नरूपस्वात्मात्मने सर्वखेचरीमुद्रायै नमः

{अपरिच्छिन्न रूपमें अपनी आत्मा ही सर्वखेचरी मुद्राशक्ति है, उसे नमस्कार}

हृदयत्रिकोणाधोभागरूप पंचतन्मात्रात्मकेभ्यः सर्वजंभनवाणेभ्यो नमः ।

तद्दक्षभागरूपमनआत्मकाभ्यां सर्वमोहनधनुर्भ्याम् नमः ।

तदूर्ध्वभागरूपरागात्मकाभ्यां सर्ववशंकरपाशाभ्यां नमः ।

तद्वामभागरूपद्वेषात्मकाभ्यां सर्वस्तंभकरांकुशाभ्यां नमः ।

{हृदय त्रिकोणके अधोभागरूप पंचतन्मात्राओंके रूपमें सर्वजंभन बाणोंको नमस्कार}

उसी हृदयके दाहिने भाग रूप मनस्वरूप सर्वमोहन धनुषको नमन}

{उसी हृदयके ऊपरके भागरूप, रागस्वरूप सर्ववशंकर पाशको नमस्कार}

{उसीके वाम भागरूप द्वेषस्वरूप सर्वस्तम्भकर अंकुशको नमन}

सूत्र {२५}

अव्यक्तमहदहंकाराःकामेश्वरीवज्रेश्वरीभगमालिन्योः अन्त स्त्रिकोणगा देवताः ।

{अव्यक्त, महत्तत्व, अहंकार, कामेश्वरी, बज्रेश्वरी, भगमालिनी आदि अन्तः त्रिकोणान्तर्गत देवता हैं }

{प्रयोग विधि}

त्रिकोणचक्राय नमः इति व्यापकं न्यस्य

{त्रिकोण चक्रराजको नमस्कार, इस प्रकार इसे व्यापक मानकर न्यास करें}

हृदयत्रिकोणाग्रभागरूपमहत्तत्त्वात्मने कामेश्वर्यैदेव्यै नमः ।

{हृदय त्रिकोणके अग्रभाग रूप महत्तत्व स्वरूपा कामेश्वरी देवीको नमन}

तद्दक्षकोणरूपाहंकारात्मने बज्रेश्वर्यैदेव्यै नमः ।

{उसके दाहिने कोण रूप अहंकारस्वरूपा बज्रेश्वरी देवीको नमस्कार}

तद्वामकोणरूपाव्यक्तात्मने भगमालिनीदेव्यै नमः ।

{हृद्रूप वाम कोणरूप अव्यक्त प्रकृतिस्वरूपा भगमालिनी देवीको नमन}

हृद्रूपसर्वसिद्धिप्रदचक्रेश्वर्यै त्रिपुराम्बायै नमः

{हृद्रूप सर्वसिद्धिप्रद चक्रेश्वरी भगवती त्रिपुराम्बाको नमस्कार}

अतिरहस्ययोगिनीरूपस्वात्मात्मने इच्छासिद्ध्यै नमः ।

{अति रहस्य योगिनी रूप अपनी आत्मा ही इच्छा सिद्धि है, उसे नमन}

अपरिच्छिन्नरूपस्वात्मात्मने सर्वबीजमुद्रायै नमः ।

{अपरिच्छिन्न रूप अपनी स्वात्मा ही सर्वबीज मुद्रा है, उसे नमस्कार}

सूत्र {२६–२७–२८–२९–३०}

निरुपाधिकीसंविदेव कामेश्वरः ।।२६।। सदानन्दपूर्णः स्वात्मैव परदेवता ललिता ।।२७।। लौहित्यमेतस्य सर्वस्य विमर्शः ।।२८।। अनन्यचित्तत्वेन च सिद्धिः ।।२९।। भावनायाः क्रिया उपचाराः ।।३०।।

{अर्थ}

निरुपाधिकी संविद ही भगवान् कामेश्वर हैं ।।२६।। सदानन्द पूर्ण अपनी आत्मा ही भगवती परदेवता ललिता है ।।२७।। इनकी सर्वांग लालिमा ही सर्वविमर्श है ।।२८।। अनन्य चित्स्वरूप तत्वसे ही सिद्धिलाभ है ।।२९।। भावनामूलक क्रिया ही सिद्धिको प्राप्त करनेका उपाय है ।।३०।।

{प्रयोग विधि}

हृन्मध्यरूपनिरुपाधिकसंविन्मात्ररूपकामेश्वरांकनिलयायै सच्चिदानन्दैक–ब्रह्मात्मिकायै परदेवतायै ललितायै महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः ।।

{हृदयके मध्य रूप निरुपाधिक संविन्मात्र रूप कामेश्वर भगवान्के अंकमें विराजित सच्चिदानन्द ब्रह्मस्वरूपा परदेवता ललिता महात्रिपुरसुन्दरीको नमस्कार}

निरुपाधिकचैतन्यमेव सच्चिदानन्दात्मकमन्तःकरणप्रतिबिंबितं सत्तदहमेव इति अनुसंधानं ललितायालौहित्यमिति विभाव्य ।।

{निरुपाधिक चैतन्य ही सच्चिदानन्दात्मक अन्तःकरणमें प्रतिबिंबित होकर जो सत्ता एवं "मैं" है इस प्रकार अनुसंधान होना ही भगवती ललिताका लौहित्य है, ऐसा विचार कर

अभेदसम्बन्धेन सत्वचित्वादिविशिष्टसंविद : केवलसंविदश्च तादात्म्य सम्बन्धरूपं कामेश्वरांकयंत्रणं विशेषणं विभाव्य ।।

{अभेद सम्बन्धसे सत्व, चित्त्व, आनन्दत्वादि विशिष्ट संविद और केवल संविद दोनोंमें तादात्म्य सम्बन्धरूप कामेश्वर भगवान्‌के अंक रूपी यंत्रमें विशेषणोंको देखें }

उपाध्यभावरूपशुक्लत्वोपलक्षिता सती शुद्धसंविदेव शुक्लचरणः ।

{उपाधियोंका सर्वथा अभाव होना ही शुक्लत्व समझें एवं शुद्ध संविद ही भगवतीके शुक्ल चरण हैं।}

चित्वविशिष्टसंवित्प्राथमिकपराहन्तात्मकमृत्युरूपेणरागेणउपलक्षिता सतीरक्तचरणः ।।

{चित्व विशिष्ट संवित् एवं प्राथमिक पर अहंता स्वरूपता मृत्युरूप रागसे उपलक्षित हुई ही रक्तचरण हैं}

अहमाकारवृत्तिनिरूपिता विषयता चरणयोर्मिथो विशेष्यविशेषणभावरूपैव तदुभयसामरस्यमिति विभाव्य ।।

{अहमाकार वृत्तिमें विषयता निरूपित करना ही चरणोंमें उर्मियाँ हैं, विशेष्य विशेषण भावरूप इन दोनोंके सामरस्यको विचारें ।}

हृद्रूपसर्वानन्दमयचक्रेश्वर्यै महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः ।

{हृदय रूप सर्वानन्दमय चक्रेश्वरी भगवती महात्रिपुरसुन्दरीको नमस्कार है}

परापररहस्ययोगिनीरूपस्वात्मात्मने प्राप्तिसिद्ध्यै नमः ।

{पर, अपर रहस्य योगिनी रूप अपनी आत्मा ही प्राप्तिसिद्धि है, उसे नमन}

अपरिच्छिन्नरूपस्वात्मात्मने सर्वयोनिमुद्रायै नमः ।

{अपरिच्छिन्नरूपा अपनी आत्मा ही सर्वयोनिमुद्रा है, उसे नमन}

भावनायाः क्रिया उपचाराः ।।३०।।

{भावनारूप क्रिया करना इसका साधन उपचार है}

इति तत्तत्स्थान स्पर्शपूर्वकं सम्यक् अनुसंधायोपचारान् समर्पयेत् ।।

{इन स्थानोंको स्पर्श करते हुए सम्यक् अन्वेषण करते हुए उपचार समर्पित करें}

तद्यथा एवम् अपरिच्छिन्नतया भाविताया ललितायाः ।
स्वमहिम्न्येव प्रतिष्ठितिमासनमनुसन्दधामि ।

{इसी प्रकार अपरिच्छिन्नताकी भावना करते हुए भगवती ललिताकी निज महिमामें प्रतिष्ठित रहना ही उनके आसनका अनुसंधान करना है ।}

वियदादिस्थूलप्रपंचरूपपादगतनामरूपात्मकमलस्य सच्चिदानन्दैक–रूपत्वभावनाजलेन क्षालनं पाद्यं भावयामि।।

{वियदादि स्थूल प्रपंच रूप चरणोंके नामरूपात्मक मलका सच्चिदानन्दैक रूपता भावना रूपी जलसे स्वच्छ करना, धोना ही पाद्यकी भावना है}

सूक्ष्मप्रपंचरूपहस्तगतस्य तस्य क्षालनं अर्घ्यं चिन्तयामि ।

{सूक्ष्म प्रपंच रूप हाथोंको सच्चिदानन्दैकरूपता भावना रूपी जलसे स्वच्छ करना, धोना ही अर्घ्य का चिन्तन करें}

भावनारूपाणामपामपि कवलीकाररूपमाचमनं भावयामि ।

{सच्चिदानन्दैकरूपता भावना रूपी जलका कवलीकार रूप आचमन समझें}

सत्वचित्वानन्दत्वाद्यखिलावयवावच्छेदेन भावनाजलसम्पर्करूपं स्नानमनु–चिन्तयामि ।।

{सत्व, चित्व एवं आनन्दत्वादि अखिल अवयव अवच्छेदोंसे सच्चिदानन्दैक भावनाजल का सम्पर्क करना ही स्नानका अनुचिन्तन करें}

तेषु एवावयवेषु प्रसक्ताया भावनात्मकवृत्तिविशेष्यतायाः प्रोञ्छनं वृत्यविषयत्वभावनेन वस्त्रं कल्पयामि ।।

{इन अवयवोंमें प्रसक्त भावनात्मक वृत्ति विशेष्यताको वृत्ति अविषयत्व भावनासे पौंछना ही वस्त्रोंकी कल्पना करना है}

निर्विषयत्वनिरञ्जनत्वाशोकत्वामृतत्वाद्यनेकधर्मरूपाख्याभरणानि धर्म्यभेदभावनेन समर्पयामि ।।

{निर्विषयत्व, निरञ्जनत्व, अशोकत्व, अमृतत्व आदि धर्म रूप कहे जाने वाले आभरण0ोंको धर्मीसे अभेद भावनापूर्वक समर्पण करना आभरण समर्पण करना है।}

स्वशरीरघटकपार्थिवभागानांजड़तापनयेन चिन्मात्रतावशेषरूपं भावनेन गन्धं प्रयच्छामि।

{अपने शरीर घटकके पार्थिव भागोंकी जड़ता नष्ट कर शेष बची चिन्मात्रता रूपको माँको समर्पित करना ही गन्ध समर्पित करना है}

स्वशरीरघटकआकाशभागानांजड़तापनयेन चिन्मात्रतावशेषरूपं भावनेन पुष्पाणि समर्पयामि ।

{हे भगवती मैं अपने शरीरके आकाश भागकी जड़ता दूर करता हुआ बची हुई चिन्मात्रताके भाव–पुष्प आपको समर्पित करता हूँ }

वायव्यभागानां तथाभावनया धूपयामि ।

{वायव्य भागोंकी तथैव भावना रूप धूप समर्पित करता हूँ}

तैजसभागानां तथाकरणेनोद्दीपयामि ।

{तैजस भागोंकी तथैव भावना रूप दीपक दर्शन कराता हूँ}

अमृतभागांस्तथा विभाव्य नैवेद्यं निवेदयामि ।

{अमृत भागोंको इसी प्रकार देखते हुए उनको नैवेद्य रूपमें समर्पित करता हूँ}

षोड़शान्तेन्दुमण्डलस्य तथा भावनेन ताम्बूलकल्पमाचरामि ।

{षोड़श कलाओं युक्त इन्दुमण्डलकी इसी प्रकार भावना द्वारा ताम्बूल कल्पित कर उसे समर्पित करता हूँ}

परापश्यन्त्यादिनिखिलशब्दानां नादद्वारा ब्रह्मण्युपसंहारचिंतनेन स्तवीमि ।

{परापश्यन्ती आदि निखिल शब्दोंके नाद द्वारा ब्रह्म भावमें उपसंहार करना ही स्तुति करना है । ऐसी मैं स्तुति करता हूँ ।}

विषयेषु धावमानानां चित्तवृत्तीनां विषयजड़तानिरासेन ब्रह्मणि प्रविलापनेन प्रदक्षिणी करोमि ।

{विषयोंमें दौड़ती हुई चित्तवृत्तियोंकी विषयजड़ता हटाकर ब्रह्मचिन्तनमें उनका प्रविलापन ही प्रदक्षिणा समर्पण है, मैं इस प्रकार प्रदक्षिणा करता हूँ}

तासां विषयेभ्यः परावर्त्तनेन ब्रह्मैकप्रवणतया प्रणमामि ।

{उनका {चित्तवृत्तियोंका} विषयोंसे परावर्त्तन एवं ब्रह्मप्रवणता ही प्रणाम करना है, मैं इस प्रकार प्रणाम निवेदन करता हूँ}

{इति उपचर्य जुहुयात्}

{इसी प्रकार उपचारोंसे {पूजन} करके तत्पश्चात् होम करें}

सूत्र {३१–३२–३३}

अहं त्वमस्ति नास्ति कर्त्तव्यमकर्त्तव्यमुपासितव्यमित्यादि विकल्पानां आत्मनि विलपनं होमः ।।३१।।

{मैं, तू, है, नहीं है, कर्त्तव्य, अकर्त्तव्य, उपासना करनी चाहिये आदि विकल्पोंका अपनी आत्मामें विलोप हो जाना ही होम है ।}

भावनाविषयाणामभेदभावनंतर्पणम् ।। ३२ ।।

{विषयोंमें एवं ब्रह्मरूप भावनामें अभेदत्व विचार करना ही तर्पण है}

पंचदशतिथिरूपेण कालस्य परिणामावलोकनं पञ्चदश नित्याः ।।३३।।

{पंचदश तिथियोंके रूपसे कालकी परिणामताका अवलोकन पन्द्रह नित्या हैं}

सूत्र {३४}

एवं मुहूर्त्तत्रितयं, मुहूर्त्त द्वितयं, मुहूर्त्तमात्रं वा भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति, स एव शिवयोगीति गद्यते ।।

{इस प्रकार उसकी नित्य भावना करता हुआ ही एक मुहूर्त्त, दो मुहूर्त्त, तीन मुहूर्त्त, निरन्तर इसी भावनामें रम जाय । वह जीवन्मुक्त हो जाता है, वही शिवयोगी कहलाता है}

सूत्र {३५}

कादिमतेनअन्तःश्चक्रभावनाः प्रतिपादिताः ।

{कादि मतसे अन्तः चक्र भावना प्रतिपादितकी गयी है ।}

सूत्र {३६}

यः एवं वेद सोऽथर्वशिरोऽधीते । इति भावनोपनिषद् ।

{जो इस प्रकार जानता है, वह अथर्वशिर विद्याका पंडित है । यह भावनोपनिषद् है ।}

{प्रयोग विधि}

विहिताविहितविषयावृत्तयः उत्पन्नाः अहं त्वं गुरुर्देवतेत्यादयः तास्सर्वाश्चक्रराजस्थानन्तशक्तिकदम्बरूपास्तत्तत्सूक्ष्मरूपा ये ये संस्काराः तत्सर्व चिन्मात्रमेवेति विभावनया निर्व्युत्थानं स्वात्मनि जुहोमि ।।३१।।

{यह विहित है, यह अविहित {निषिद्ध} है, इन विषयोंमें जो वृत्ति उत्पन्न होती है, उनसे उत्पन्न मैं, तू, गुरु, देवता आदि जो संस्कार {अवधारणायें} हैं वे सभी श्रीचक्रराजस्थ अनन्त कदम्ब रूप हैं, उनके जो सूक्ष्म संस्कार हैं, उन सबको चिन्मात्र समझते हुए सब भावनाओंसे अपनेको विरहित करना एवं निर्व्युत्थान दशा प्राप्त करना ही अपने आपको होम करना है ।}

प्रकृतभावनासु ये गुरुचरणादिशक्तिकदम्बान्ताविषयास्ते सर्वेऽपि चिन्मात्ररूपा न परस्परं भिद्यन्ते इति भावनया तर्पयामि ।।३२।।

{प्रकृत भावनामें जो गुरुचरणादि शक्तियाँ हैं, वे कदम्ब वृक्षोंके नीचे प्राप्त होने वाले विषय हैं, वे सभी चिन्मात्र रूप हैं, इनमें परस्पर कोई भी भेद नहीं है, इस प्रकारकी भावना ही तर्पण करना है और मैं इस भावनासे ही तर्पण करता हूँ}

तिथिचक्रमुक्तरूपं कालचक्रं देशचक्रं च सर्वमस्ति भाति प्रियं च न तु नामरूपवदेतत्सर्व ब्रह्मैवेति विभावयामि ।।३३।।

{तिथि चक्रका जो उक्त रूप है, प्रतिपदा, द्वितीया आदि तथा कालचक्र, वर्ष, मास, संवत्सरादि, देशचक्र तथा सबकुछ जो भी है, अनुभवमें आ रहा है अथवा प्रिय लग रहा है, यह सब नामरूपात्मक न होकर केवल ब्रह्म ही है – इस प्रकार विचार करता हूँ।}

{अथवा}

{पूर्व जैसा लिखा गया है, उसकी नित्य भावना करता हुआ ही श्वास–प्रश्वास लेता रहे, इस प्रकार मनको श्वास–प्रश्वासके साथ एकीकृत अनुभव करता हुआ तीन मुहूर्त, दो मुहूर्त अथवा एक मुहूर्त निरन्तर इसी

भावनामें रम जाये एवं व्यापक हो जाये । इस प्रकार करनेवालेकी देवतार आत्मैक्यसिद्धि हो जाती है और वह जो भी कार्योंका चिन्तन करता है, वे सभ स्वतःसिद्ध हो जाते हैं।}

इस प्रकार नीचे उतरकर मूलमंत्रसे पुनः तीन बार प्राणायाम करें, ऋष्यादिन्यास तीन बार करें, तब गुरुदेवकी स्तुति करें ।

सर्व शिवम् ।

अथर्वशिरसि प्रोक्तभावनानां सतां मुदे ।

{सन्तोंकी प्रसन्नताके लिये यह अथर्वशीर्षमें कही गयी भावनाका वर्णन हुआ है ।

भगवतीकी स्तुति

श्यामे संगीतमातः परशिवनिलये मुख्यसाचिव्यभारो–
द्वाहे दक्षे दयापूरित निज हृदये मामकीं दैन्यवृत्तिम्।
श्रीमत्सिंहासनेश्यां भववनपतितान्दावदग्धान्नमस्ते
त्रातुं पीयूषवर्षैः कथय परिकरं बद्धवत्यां विविक्ते ।।

{भावार्थ}

हे माते ! श्यामा संगीत मातृका देवी !! आप परशिव भगवान् कामेश्वरके चिन्तामणि मन्दिरमें भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी सचिव हैं, उन्हें मंत्रणा देती हैं, आप सचिव पदको निर्वाह करनेमें परम कुशल हैं । आप कृपा कर अपने दयापूरित हृदयमें मेरी दीन अवस्था पर विचार करें । हे अनन्त लक्ष्मियोंसे युक्त श्रीमान् सिंहासनासीने ! आप इस संसार रूपी वनमें पड़े, त्रितापकी ज्वालामें जलते हुए मुझ पर मेरा त्राण करनेके लिये अपनी कृपादृष्टिकी पीयूषवर्षा करें एवं अपने परिकरोंको आदेश दें कि वे मुझ बँधे हुएको छोड़ दें, मैं आपको नमस्कार करता हूँ ।

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षः यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः ।
श्रीसुन्दरीसाधकपुंगवानां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ।।

{भावार्थ}

जहाँ भोग हैं, वहाँ मोक्ष नहीं है एवं जहाँ मोक्ष है, वहाँ भोग नहीं हैं । श्रीसुन्दरीके जो श्रेष्ठ साधक हैं, उनके लिये भोग एवं मोक्ष दोनों करतल गत हैं।

पातय वा पाताले स्थापय वा सकल लोकसाम्राज्ये ।
मातस्तवांघ्रियुगलं नाहं मुञ्चामि नैव मुञ्चामि ।।
यश्शिवो नामरूपाभ्यां या देवी सर्वमंगला ।
तयोः संस्मरणात् पुंसां सर्वतो जय मंगलम् ।।

{भावार्थ}

हे माता ! आप चाहे मुझे पातालमें गिरा दें, चाहे सम्पूर्ण लोकोंका साम्राज्य प्रदान करें, मैं आपके चरणकमलोंको न तो छोड़ूँगा न ही कभी भी छोड़ पाऊँगा । जहाँ भी शिव नाम एवं रूप है एवं जहाँ भगवती सर्वमंगला देवी हैं, इनके स्मरण मात्रसे मनुष्यका सदा मंगल ही मंगल है ।

{पुष्पांजलि मंत्र}

{पूजनके पश्चात् पुष्पाञ्जलि देनेका तो नियम है ही । ये पुष्पांजलिके मंत्र भी पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाके द्वारा ही मेरे पूर्वाश्रमके पू. मामाजी श्री चिम्मनलाल गोस्वामीको बताये गये थे । अतः उनकी उपासनाके क्रमके ही हैं । ये सभी विधियाँ मुझे लगभग ई0 सन् १९५८ में प्राप्त हुई थीं । पू. गुरुदेव काष्ठमौनके पश्चात् श्रीपोद्दार महाराजके साथ ही रतनगढ़ चले गये थे । मैं गोरखपुर ही रह गया था । पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी बातें मैं पू. मामाजीसे मध्याह्नमें किया करता था । उन्हीं प्रसंगोंमें पू. मामाजी श्रीचिम्मनलालजी द्वारा ये सब विधियाँ मुझे मिली थीं ।

संस्कृतके सभी श्लोकोंका अनुवाद मैंने मेरी अल्प बुद्धि द्वारा किया है, अतः भूल हो तो मेरी संस्कृतकी अज्ञानता समझकर क्षमा करेंगे ।}

{१}

शिवे शिवसुशीतलामृततरंगगन्धोल्लसन्नवावरणदेवते
नवनवामृतस्यन्दिनी
गुरुक्रमपुरस्कृतेगुणशरीरनित्योज्ज्वले षड़ंगपरिवारिते
कलित एष पुष्पांजलिः ।।

{भावार्थ}

हे शिवे ! हे भगवान् सदाशिवको सुशीतल कर देने वाली अमृत तरंग!! हे निजांगगन्धोल्लाससे उल्लसित नौ आवरणों वाली भगवती !!! हे नव–नवामृतस्यंदिनी !!!! हे नित्योज्ज्वले !!!!! हे त्रिगुणात्मक शरीर धृते !!!!!! हे षड़ंग परिवार वाली, हे स्वामिनी !!!!!!! मेरी इस पुष्पाञ्जलिको स्वीकार करें।

{२}

समस्तमुनियक्षकिम्पुरुषसिद्धविद्याधर–
गुहासुरसुराप्सरोगणमुखैर्गणैर्सेविते ।
निवृत्तितिलकाम्बरप्रकृतिशान्तिविद्याकला–
कलापमधुराकृते कलित एष पुष्पांजलि ।।

{भावार्थ}

हे मुनि, यक्ष, किम्पुरुष, सिद्ध, विद्याधर, गुह, असुर, सुर, अप्सराओंके प्रमुख गणाधिपतियों द्वारा सेव्यमाने ! हे निवृत्तिका तिलक एवं प्रवृत्तिका अम्बर धारण करने वाली !! हे शान्ति एवं विद्या कलाओंकी कलाप, परम मधुर आकृति वाली माँ, मेरी इस पुष्पांजलिको स्वीकार करें ।

{३}

त्रिवेदकृतविग्रहे त्रिविधकृत्यसन्धायिनि
त्रिरूपसमवायिनि त्रिपुरमार्ग– संचारिणि ।
त्रिलोचनकुटुम्बिनि त्रिगुणसंविदुद्यत्पदे
त्रयि त्रिपुरसुन्दरि त्रिजगदीशि पुष्पाञ्जलिः ।।

{भावार्थ}

हे ऋक्, यजुः एवं साम–तीनों वेदोंमें ही अपनी मूर्त्ति स्थापित करने वाली, सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय–तीनों प्रकारके कर्म करने वाली, ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश त्रिरूपोंकी समवायिनी, त्रिपुर {श्रीपुर} निज श्रीलोकमें संचरण करने वाली, भगवान् त्रिलोचन शंकरजीकी कुटुम्बिनी, त्रिगुण रूप संविद्को अपनी चरणप्रभासे उत्पन्न करने वाली {सत्वको चरणनखचन्द्रिकासे, रजको चरण तलकी मनोहर लालिमासे एवं तमको चरणोंकी पगथलीकी कठोरतासे} हे त्रयि ! त्रिपुरसुन्दरी, माँ ! हे स्वर्ग, धरा एवं पाताल तीनों लोकोंकी ईश्वरी!!! तेरे लिये यह पुष्पाञ्जलि अर्पित है ।

{४}

पुरन्दरजलाधिपान्तककुबेररक्षोहर
प्रभञ्जनधनञ्जय प्रभृति वन्दनानन्दिते ।
प्रवालपदपीठिकानिकटनित्यवर्त्तिस्वभू–
विरञ्चिविहितस्तुते विहित एष पुष्पांजलिः ।।

{भावार्थ}

इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, राक्षसोंका नाश करने वाले भगवान् राम अर्जुन प्रभृतिके द्वाराकी हुई वन्दनासे आनन्दित होने वाली, अपनी प्रवाल रत्नखचित चरण–पीठिकाके निकट बैठे स्वयंभू ब्रह्माजी द्वारा जो स्तुत्य हैं, वे पराम्बा मेरी यह पुष्पाञ्जलि स्वीकार करें ।

{५}

तरंगयति सम्पदं तदनु संहरत्यापदं
सुखं वितरति श्रियं परिधिनोति हन्ति द्विषः ।
क्षिणोति दुरितानि यत्प्रणतिरम्ब तस्यै सदा,
शिवंकरि शिवे परे शिवपुरन्ध्रि तुभ्यं नमः ।।

{भावार्थ}

हे शिवे ! जो भा तुझे प्रणाम करता है, उसके तू दुरित क्षीण करती है, हे शिवंकरि !! उसकी तू श्री सम्द्धि बढ़ाती है, हे शिवपुरन्ध्रि !!! उससे द्वेष करने वालोंका नाश भी तू ही करती है, हे परे !!!! तू उसे निरन्तर सुख

वितरित करती है एवं उसकी आपदाओंको समूल नष्ट करती है, तेरी अनुकूलता से सर्व शुभ सम्पदाएँ उसके ऊपर उमड़–उमड़कर लहराकर पड़ती हैं, हे माँ! मैं तुझे प्रणाम करता हूँ ।

{६}

त्वमेव जननी पिता त्वमथ बान्धवस्त्वं सखा
त्वमायुरपरं त्वमाभरणमात्मनस्त्वं कला ।
त्वमेव वपुषः स्थितिस्त्वमखिलायतिस्त्वं गुरु
प्रसीद परमेश्वरि प्रणतपात्रि तुभ्यं नमः ।।

{भावार्थ}

हे माते! तू ही मेरी माता–पिता है, तू ही बन्धु–बान्धव एवं सखा है, तू ही मेरा जीवन {आयु} है और तू ही मृत्यु है, तू ही मेरे आभरण है और तू ही मेरी आत्मा है, तू ही कला है और तू ही मेरा शरीर {तन} है, तू मेरी अस्तित्व {स्थिति} है, तू ही यह अखिल विश्व है और तू ही उत्तम बुद्धि रूप गुरु है । हे देवि !! तू ही मेरे लिये प्रणामकी पात्री है, हे परमेश्वरी !!! आप मुझ पर प्रसन्न हों ।

{७}

कञ्जासनादिसुरवृन्दलसत्किरीट कोटिप्रघर्षणसमुज्ज्वलदंघ्रिपीठे ।
त्वामेव यामि शरणं विगतान्यभावं दीनं विलोकय दयार्द्र विलोचनेन ।।

{भावार्थ}

हे माते ! तेरी चरणपीठ {जिस पर तू चरण रखती है} करोड़ों ब्रह्मादि सुरवृन्दोंके मस्तक पर विराजित मुकुटोंके–तुझे नमन किये जानेसे हुए घर्षणसे घिस–घिसकर समुज्ज्वल हो गयी है । मैं अन्यभाव त्याग अनन्यरूपसे तेरी शरण ग्रहण करता हूँ, तू दयार्द्र नेत्रोंसे मुझ दीनकी ओर देख ।

पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी तंत्र साधनाके मुख्य स्तोत्र

पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी तंत्र–साधनाका प्रारम्भ ही श्रीपोद्दार महाराज द्वारा उन्हें प्रेषित मद्राससे छपी "श्रीसौभाग्याष्टोत्तरशतनाम स्तोत्रम्" नामक पुस्तकसे हुआ था । उस पुस्तकमें मुद्रणगत अनेक अशुद्धियाँ थीं, अतः उस पुस्तकका शोधन पू. गुरुदेवके सान्निध्यमें श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी एवं श्रीरामनारायणदत्त शास्त्रीने किया था । यह बात संभवतः १९४५ ई० के आसपासकी है । उन्हीं दिनों मद्राससे पू. गुरुदेवने श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रम् पुस्तक भी मँगायी थी और इन सब पुस्तकोंमें–जिनमें श्रीललिताअष्टोत्तरशतनामावलि तथा श्रीललितात्रिशतीस्तोत्ररत्नावली भी थी – बहुत अशुद्धियाँ पाकर पू. गुरुदेवने श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके साथ बैठकर चतुर्थ्यन्त पदसे इन सभी स्तोत्रोंकी नामावलियाँ तैयार करायी थीं । श्रीललिताअष्टोत्तरशतनामावली तो श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी द्वारा संशोधित करके कल्याणके शक्ति अंकमें प्रकाशित भी करा चुके थे ।

आजकल भी वे नामावलियाँ वाराणसीके अनेक मुद्रक एवं प्रकाशक प्रकाशित करते हैं परन्तु इनमें अशुद्धियोंकी भरमार रहती है, अतः पू. गुरुदेव द्वारा इन परमोच्चसाधनाके सोपान रूपमें प्रयुक्त नामावलियोंका पूर्ण शुद्ध संस्करण प्रकाशित करनेका प्रयास किया जा रहा है । उनकी जीवनीके इस प्रसंगमें ये नामावलियाँ शुद्ध रूपमें पाकर पाठक प्रसन्न ही होंगे ।

इन नामावलि–स्तोत्रोंमेंसे "श्रीसौभाग्यअष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्" तो गीताप्रेस, गोरखपुरसे श्रीपोद्दार महाराजने पू. गुरुदेवके अनुमोदन पर प्रकाशित करवा दिया था । उसका उस समय मूल्य मात्र पाँच पैसे था ।

इन सबके अतिरिक्त इस उपासनामें पू. गुरुदेव "श्रीसूक्त" के अनगिनत पाठ कर चुके थे, अतः वह स्तोत्र भी यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है ।

पू. गुरुदेव यह कथा बताया करते थे कि भगवती आद्याशक्ति त्रिपुराने भगवती लक्ष्मीजीकी तपस्या साधनासे प्रसन्न होकर उन्हें सम्पूर्ण रूपसे अपना बना लिया था । तभीसे उनका "श्री" नाम भगवती त्रिपुराने अपना "नाम" घोषित कर दिया । तभीसे भगवतीकी उपासना "श्रीविद्योपासना" कही जाने लगी । भगवती त्रिपुराके धामका नाम भी "श्रीधाम" और उनके यंत्रराजको "श्रीयंत्रराज" कहा जाता है । इसी प्रकार भगवती लक्ष्मीजीके श्रीसूक्तको भी

उन्होंने अपना सूक्त घोषित कर दिया । पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी साधनामें "श्रीसूक्त" का भी विशेष स्थान था। अतः यहाँ "श्रीसूक्त" भी प्रथमतः दिया जा रहा है । शेष सभी स्तोत्र क्रमशः हैं ।

श्रीसूक्तमूलपाठः

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ।।१।।
तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ।।२।।
अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम् ।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवीर्जुषताम् ।।३।।
कांसोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रीं ज्वलंतीं तृप्तां तर्पयन्तीम् ।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम् ।।४।।
चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
तां पद्मिनीं ॐ शरणमहं प्रपद्ये अलक्ष्मी में नश्यतां त्वां वृणे ।।५।।
आदित्यवर्णे तपसोधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथबिल्वः ।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तरायाश्च बाह्या अलक्ष्मीः ।।६।।
उपैतु मां देवसखः कीर्त्तिश्च मणिना सह ।
प्रादुर्भूतोस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्त्तिमृद्धिं ददातु मे ।।७।।
क्षुत्पिपासा मलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ।।८।।
गन्धाद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ।।९।।
मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ।।१०।।
कर्दमेन प्रजाभूता मयि संभव कर्दमः ।
श्रियं वासय मे कुले मातर पद्ममालिनीम् ।।११।।
आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिकलीत वस मे गृहे ।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ।।१२।।
आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिंगलां पद्म मालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ।।१३।।

आर्द्रां यष्करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ।।१४।।
तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीं ।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान्विन्देयं पुरुषानहम् ।।१५।।
यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।
श्रियः पञ्चदशर्चञ्च श्रीकामः सततं जपेत् ।।१६।।
सरसिजनिलये सरोजहस्ते धवलतरांशुकगंधमाल्यशोभे ।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम् ।।१७।।
धानमग्निर्धानं वायुर्धानं सूर्योधानं वसुः ।
धानमिन्द्रो बृहस्पतिर्वरुणं धानमश्विनौ ।।१८।।
वैनतेय सोमं पिब सोमं पिबतु वृत्रहा ।
सोमं धानस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोमिनः ।।१९।।
न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः ।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां श्रीसूक्तं जपेत् ।।२०।।
पद्मानने पद्मऊरु पद्माक्षि पद्मसंभवे ।
तन्मे भजति पद्माक्षि येन सौख्यं लभाम्यहम् ।।२१।।
विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियां ।
विष्णुप्रिय सखीं देवीं नमाम्यच्युतवल्लभाम् ।।२२।।
महालक्ष्मींच विद्महे विष्णुपत्नीं च धीमहि ।
तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ।।२३।।
पद्मानने पद्मिनि पद्मपत्रे, पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि ।
विश्वप्रिये विश्वमनोनुकूले, त्वत्पादपद्मं मयि संनिधत्स्व ।।२४।।
आनन्दः कर्दमः श्रीदः चिल्कीत इति विश्रुताः ।
ऋषयः श्रियपुत्राश्च मयि श्रीर्देवी देवता ।।२५।।
ऋण रोगादि दारिद्रय पापक्षुदयमृत्यवः ।
भयशोकमनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा ।।२६।।
श्रीर्वर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधात्पवमानं महीयते ।
धनं धान्यं पशुं बहुपुत्रलाभं शत संवत्सरं दीर्घमायुः ।।२७।।

इति फलश्रुतिसहितं श्रीसूक्तं समाप्तं

श्रीहरिः

अथ सौभाग्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

निशम्यैतज्जामदग्न्यो माहात्म्यं सर्वतोऽधिकम् ।
स्तोत्रस्य भूयः पप्रच्छ दत्तात्रेयं गुरूत्तमम् ।।१।।
भगवंस्त्वन्मुखाम्भोजनिर्गमद्वाक्सुधारसम् ।
पिबतः श्रोत्रमुखतो वर्धतेऽनुक्षणं तृषा ।।२।।
अष्टोत्तरशतं नाम्नां श्रीदेव्या यत्प्रसादतः ।
कामः सम्प्राप्तवाँल्लोके सौभाग्यं सर्वमोहनम् ।।३।।
सौभाग्यविद्यावर्णानामुद्धारो यत्र संस्थितः ।
तत्समाचक्ष्व भगवन् कृपया मयि सेवके ।।४।।
निशम्यैवं भार्गवोक्तिं दत्तात्रेयो दयानिधिः ।
प्रोवाच भार्गवं रामं मधुराक्षरपूर्वकम् ।।५।।
शृणु भार्गव यत्पृष्टं नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।
श्रीविद्यावर्णरत्नानां निधानमिव संस्थितम् ।।६।।
श्रीदेव्या बहुधा सन्ति नामानि शृणु भार्गव ।
सहस्रशतसंख्यानि पुराणेष्वागमेषु च ।।७।।
तेषु सारतरं ह्येतत् सौभाग्याष्टोत्तरात्मकम् ।
यदुवाच शिवः पूर्वं भवान्यै बहुधार्थितः ।।८।।
सौभाग्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्रस्य भार्गव ।
ऋषिरुक्तः शिवश्छन्दो ऽनुष्टुप् श्रीललिताम्बिका ।।९।।
देवता विन्यसेत् कूटत्रयेणावर्त्य सर्वतः ।
ध्यात्वा सम्पूज्य मनसा स्तोत्रमेतदुदीरयेत् ।।१०।।

अथ नाममन्त्राः

ॐ कामेश्वरी कामशक्तिः कामसौभाग्यदायिनी ।
कामरूपा कामकला कामिनी कमलासना ।।११।।
कमला कल्पनाहीना कमनीयकलावती ।
कमलाभारतीसेव्या कल्पिताशेषसंस्कृतिः ।।१२।।
अनुत्तरानघानन्ताद्भुतरूपानलोद्भवा ।
अतिलोकचरित्रातिसुन्दर्यतिशुभप्रदा ।।१३।।
अघहन्त्र्यतिविस्तारार्चनतुष्टामितप्रभा ।
एकरूपैकवीरैकनाथैकान्तार्चनप्रिया ।।१४।।

एकैकभावतुष्टैकरसैकान्तजनप्रिया ।
एधमानप्रभावैधद्भक्तपातकनाशिनी ।।१५।।
एलामोदमुखैनोऽद्रिशक्रायुधसमस्थितिः ।
ईहाशून्येप्सितेशादिसेव्येशानवरांगना ।।१६।।
ईश्वराज्ञापिकेकारभाव्येप्सितफलप्रदा ।
ईशानेतिहरेक्षेषदरुणाक्षीश्वरेश्वरी ।।१७।।
ललिता ललनारूपा लयहीना लसत्तनुः ।
लयसर्वा लयक्षोणिर्लयकर्त्री लयात्मिका ।।१८।।
लघिमा लघुमध्याढ्या ललमाना लघुद्रुता ।
हयारूढा हतामित्रा हरकान्ता हरिस्तुता ।।१९।।
हयग्रीवेष्टदा हालाप्रिया हर्षसमुद्धता ।
हर्षणा हल्लकाभांगी हस्त्यन्तैश्वर्यदायिनी ।।२०।।
हलहस्तार्चितपदा हविर्दानप्रसादिनी ।
रामा रामार्चिता राज्ञी रम्या रवमयी रतिः ।।२१।।
रक्षिणी रमणी राका रमणीमण्डलप्रिया ।
रक्षिताखिललोकेशा रक्षोगणनिषूदिनी ।।२२।।
अम्बान्तकारिण्यम्भोजप्रियान्तकभयंकरी ।
अम्बुरूपाम्बुजकराम्बुजजातवरप्रदा ।।२३।।
अन्तःपूजाप्रियान्तःस्थरूपिण्यन्तर्वचोमयी ।
अन्तकारातिवामांकस्थितान्तस्सुखरूपिणी ।।२४।।
सर्वज्ञा सर्वगा सारा समा समसुखा सती ।
संततिः संतता सोमा सर्वा सांख्या सनातनीॐ ।।२५।।

फलश्रुतिः

एतत् ते कथितं राम नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।
अतिगोप्यमिदं नाम्नः सर्वतः सारमुद्धृतम् ।।२६।।
एतस्य सदृशं स्तोत्रं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
अप्रकाश्यमभक्तानां पुरतो देवताद्विषाम् ।।२७।।
एतत् सदाशिवो नित्यं पठन्त्यन्ये हरादयः ।
एतत्प्रभावात् कन्दर्पस्त्रैलोक्यं जयति क्षणात् ।।२८।।
सौभाग्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं मनोहरम् ।
यस्त्रिसंध्यं पठेन्नित्यं न तस्य भुवि दुर्लभम् ।।२९।।
श्रीविद्योपासनवतामेतदावश्यकं मतम् ।
सकृदेतत् प्रपठतां नान्यत् कर्म विलुप्यते ।।३०।।

अपठित्वा स्तोत्रमिदं नित्यं नैमित्तिकं कृतम् ।
व्यर्थीभवति नग्नेन कृतं कर्म यथा तथा ॥३१॥
सहस्रनामपाठादावशक्तस्त्वेतदीरयेत् ।
सहस्रनामपाठस्य फलं शतगुणं भवेत् ॥३२॥
सहस्रधा पठित्वा तु वीक्षणान्नाशयेद्रिपून् ।
करवीररक्तपुष्पैर्हुत्वा लोकान् वशं नयेत् ॥३३॥
स्तम्भयेत् पीतकुसुमैर्नीलैरुच्चाटयेद् रिपून् ।
मरिचैर्विद्वेषणाय लवंगैर्व्याधिनाशने ॥३४॥
सुवासिनीर्ब्राह्मणान् वा भोजयेद् यस्तु नामभिः ।
यश्च पुष्पैः फलैर्वापि पूजयेत् प्रतिनामभिः ॥३५॥
चक्रराजेऽथवान्यत्र स वसेच्छ्रीपुरे चिरम् ।
यः सदाऽऽवर्तयन्नास्ते नामाष्टशतमुत्तमम् ॥३६॥
तस्य श्रीललिता राज्ञी प्रसन्ना वाञ्छितप्रदा ।
एतत्ते कथितं राम शृणु त्वं प्रकृतं ब्रुवे ॥३७॥

इति श्रीत्रिपुरारहस्ये श्रीसौभाग्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

श्रीललिताष्टोत्तरशतनामावलिः

अथ ध्यानम्

सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुरत्
तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीनवक्षोरुहाम् ।
पाणिभ्यामतिपूर्णरत्नचषकं रक्तोत्पलं बिभ्रतीम्
सौम्यां रत्नघटस्थरक्तचरणां ध्यायेत्परामम्बिकाम् ।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं

श्लोकोऽनुष्टुप्

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं रजताचलशृंगाग्रमध्यस्थायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हिमाचलमहावंशपावनायै नमोनमः ।।१।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शंकरार्द्धांगसौन्दर्यशरीरायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं लसन्मरकतस्वच्छविग्रहायै नमो नमः ।।२।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं महातिशयसौन्दर्यलावण्यायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शशांकशेखरप्राणवल्लभायै नमो नमः ।।३।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सदा पञ्चदशात्मैक्यस्वरूपायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं वज्रमाणिक्यकटककिरीटायै नमो नमः ।।४।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कस्तूरीतिलकीभूतनिटिलायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भस्मरेखांकितलसन्मस्तकायै नमो नमः ।।५।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं विकचाम्भोरुहदललोचनायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शरच्चाम्पेयपुष्पाभनासिकायै नमो नमः ।।६।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं लसत्काञ्चनताटंकयुगलायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं मणिदर्पणसंकाशकपोलायै नमो नमः ।।७।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ताम्बूलपूरितस्मेरवदनायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सुपक्वदाडिमीबीजरदनायै नमो नमः ।।८।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कम्बुपूगसमच्छायकन्धरायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं स्थूलमुक्ताफलोदारसुहारायै नमो नमः ।।९।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं गिरीशबद्धमांगल्यमंगलायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं पद्मपाशांकुशलसत्कराब्जायै नमो नमः ।।१०।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं पद्मकैरवमन्दारसुमालिन्यै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सुवर्णकुम्भयुग्माभसुकुचायै नमो नमः ।।११।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं रमणीयचतुर्बाहुसंयुक्तायै नमो नमः ।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कनकांगदकेयूरभूषितायै नमो नमः ।।१२।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं बृहत्सौवर्णसौन्दर्यवसनायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं बृहन्नितम्बविलसज्जघनायै नमो नमः ।।१३।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सौभाग्यजातशृंगारमध्यमायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं दिव्यभूषणसन्दोहराजितायै नमो नमः ।।१४।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं पारिजातगुणाधिक्यपदाब्जायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सुपद्मरागसंकाशचरणायै नमो नमः ।।१५।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कामकोटिमहापद्मपीठस्थायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्रीकण्ठनेत्रकुमुदचन्द्रिकायै नमो नमः ।।१६।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सचामररमावाणीवीजितायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भक्तरक्षणदाक्षिण्यकटाक्षायै नमो नमः ।।१७।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भूतेशालिंगनोद्भूतपुलकांग्यै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अनंगजनकापांगवीक्षणायै नमो नमः ।।१८।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ब्रह्मोपेन्द्रशिरोरत्नरञ्जितायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शचीमुखामरवधूसेवितायै नमो नमः ।।१९।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं लीलाकल्पितब्रह्माण्डमण्डितायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अमृतादिमहाशक्तिसंवृतायै नमो नमः ।।२०।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं एकातपत्रसाम्राज्यदायिकायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सनकादिसमाराध्यपादुकायै नमो नमः ।।२१।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं देवर्षिभिःस्तूयमानवैभवायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कलशोद्भवदुर्वासःपूजितायै नमो नमः ।।२२।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं मत्तेभवक्त्रषड्वक्त्रवत्सलायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं चक्रराजमहायंत्रमध्यवर्त्त्यै नमो नमः ।।२३।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं चिदग्निकुण्डसंभूतसुदेहायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शशांकखण्डसंयुक्तमुकुटायै नमो नमः ।।२४।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं मत्तहंसवधूमन्दगमनायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं वन्दारुजनसन्दोहवन्दितायै नमो नमः ।।२५।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अन्तर्मुखजनानन्दफलदायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं पतिव्रतांगनाभीष्टफलदायै नमो नमः ।।२६।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अव्याजकरुणापूरपूरितायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं नितान्तसच्चिदानन्दसंयुक्तायै नमो नमः ।।२७।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सहस्रसूर्यसंयुक्तप्रकाशायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं रत्नचिन्तामणिगृहमध्यस्थायै नमो नमः ।।२८।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हानिवृद्धिगुणाधिक्यरहितायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं महापद्माटवीमध्यभागस्थायै नमो नमः ॥२९॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तीनांसाक्षिभूत्यै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं महातापौघपापानांविनाशिन्यै नमो नमः ॥३०॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं दुष्टभीतिमहाभीतिभञ्जनायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं समस्तदेवदनुजप्रेरकायै नमो नमः ॥३१॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं समस्तहृदयाम्भोजनिलयायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अनाहतमहापद्ममन्दिरायै नमो नमः ॥३२॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सहस्रारसरोजातवासितायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं पुनरावृत्तिरहितपुरस्थायै नमो नमः ॥३३॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं वाणीगायत्रिसावित्रीसंन्नुतायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं रमाभूमिसुताराध्यपदाब्जायै नमो नमः ॥३४॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं लोपामुद्रार्चितश्रीमच्चरणायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सहस्ररतिसौन्दर्यशरीरायै नमो नमः ॥३५॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भावनामृतसंतुष्टहृदयायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सत्यसम्पूर्णविज्ञानसिद्धिदायै नमो नमः ॥३६॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं त्रिलोचनकृतोल्लासफलदायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्रीसुधाब्धिमणिद्वीपमध्यगायै नमो नमः ॥३७॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं दक्षाध्वरविनिर्भेदसाधनायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्रीनाथसोदरीभूतशोभितायै नमो नमः ॥३८॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं चन्द्रशेखरभक्तार्त्तिभञ्जनायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सर्वोपाधिविनिर्मुक्तचैतन्यायै नमो नमः ॥३९॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं नामपारायणाभीष्टफलदायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सृष्टिस्थितितिरोधानसंकल्पायै नमो नमः ॥४०॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्रीषोड्शाक्षरीमंत्रमध्यगायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अनाद्यन्तस्वयंभूतदिव्यमूर्त्यै नमो नमः ॥४१॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भक्तहंसपरीमुख्यवियोगायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं मातृमंडलसंयुक्तललितायै नमो नमः ॥४२॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भण्डदैत्यमहासत्वनाशनायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रूरभण्डशिरच्छेदनिपुणायै नमो नमः ॥४३॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं धात्रच्युतसुराधीशसुखदायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं चण्डमुण्डनिशुम्भादिखण्डनायै नमो नमः ॥४४॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं रक्ताक्षरक्तजिह्वादिशिक्षणायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं महिषासुरदौर्वीर्यनिग्रहायै नमो नमः ।।४५।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अभ्रकेशमहोत्साहकरणायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं महेशयुक्तनटनतत्परायै नमो नमः ।।४६।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं निजभर्तृमुखाम्भोजचिन्तनायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं वृषभध्वजविज्ञानभावनायै नमो नमः ।।४७।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं जन्ममृत्युजरारोगभञ्जनायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं विदेहमुक्तिविज्ञानसिद्धिदायै नमो नमः ।।४८।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कामक्रोधादिषड्वर्गनाशनायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं राजराजार्चितपदसरोजायै नमो नमः ।।४९।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सर्ववेदान्तसंसिद्धसुतत्वायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्रीवीरभक्तविज्ञानविन्दनायै नमो नमः ।।५०।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अशेषदुष्टदनुजसूदनायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं साक्षाच्छ्रीदक्षिणामूर्तिमनोज्ञायै नमो नमः ।।५१।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं महामेधाग्रसम्पूज्यमहिमायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं दक्षप्रजापतिसुतावेषाढ्यायै नमो नमः ।।५२।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सुमबाणेक्षुकोदण्डमण्डितायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं नित्ययौवनमांगल्यमंगलायै नमो नमः ।।५३।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं महादेवसमायुक्तमहादेव्यै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं चतुर्विंशतितत्त्वैकस्वरूपायै नमो नमः ।।५४।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं (पाठभेद)–महादेवरतौत्सुक्यमहादेव्यै नमो नमः ।

(श्रीजगदम्बार्पणमस्तु ।)

श्रीललितासहस्रनामावलिः
(चतुर्थ्यन्त)

अस्य श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रमालामंत्रस्य वशिन्यादिभ्यो वाग्देवताभ्य ऋषिभ्यो नमः शिरसि । अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे । श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै देवतायै हृदये । 'क' ५ बीजाय गुह्ये (षोडशाक्षरी साधकानांतु 'क' ६) । स० ४ शक्तये पादयोः । 'ह' ६ कीलकाय नाभौ । चतुर्विध पुरुषार्थ–सिद्ध्यर्थे जपे (श्रीललिताम्बाप्रीत्यर्थे) पूजने, अर्चने विनियोगाय सर्वांगे ।

कूटत्रयं द्विरावृत्य बाला वा षडंगद्वयम् ।

ध्यानश्लोकः

सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुरत्
तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीनवक्षोरुहां ।
पाणिभ्यामलिपूर्णरत्नचषकं रक्तोत्पलं विभ्रतीं
सौम्यां रत्नघटस्थरक्तचरणां ध्यायेत्परामंबिकाम् ।

मानसैः पञ्चोपचारैः सम्पूज्य,

ॐ – ऐं – ह्रीं – श्रीं

ॐ श्रीमात्रे नमः
ॐ श्रीमहाराज्ञ्यै नमः
ॐ श्रीमत्सिंहासनेश्वर्यै नमः
ॐ चिदग्निकुण्डसंभूतायै नमः
ॐ देवकार्यसमुद्यतायै नमः
ॐ उद्यद्भानुसहस्राभायै नमः
ॐ चतुर्बाहुसमन्वितायै नमः
ॐ रागस्वरूपपाशाढ्यायै नमः
ॐ क्रोधाकारांकुशोज्ज्वलायै नमः
ॐ मनोरूपेक्षुकोदण्डायै नमः ।१०।
ॐ पंचतन्मात्रसायकायै नमः
ॐ निजारुणप्रभापूरमज्जद्ब्रह्माण्डमण्डलायै नमः
ॐ चम्पकाशोकपुन्नागसौगन्धिकलसत्कचायै नमः
ॐ कुरुविन्दमणिश्रेणीकनत्कोटीरमण्डितायै नमः
ॐ अष्टमीचन्द्रविभ्राजदलिकस्थलशोभितायै नमः ।।१५।।
ॐ मुखचन्द्रकलंकाभमृगनाभिविशेषकायै नमः
ॐ वदनस्मरमांगल्यगृहतोरणचिल्लिकायै नमः
ॐ वक्त्रलक्ष्मीपरीवाहचलन्मीनाभलोचनायै नमः
ॐ नवचम्पकपुष्पाभनासादण्डविराजितायै नमः
ॐ ताराकान्तितिरस्कारिनासाभरणभासुरायै नमः ।।२०।।

ॐ कदम्बमञ्जरीक्लृप्तकर्णपूरमनोहरायै नमः ।
ॐ ताटंकयुगलीभूततपनोडुपमण्डलायै नमः ।
ॐ पद्मरागशिलादर्शपरिभाविकपोलभुवे नमः ।
ॐ नवविद्रुमबिम्बश्रीन्यक्कारिदशनच्छदायै नमः ।
ॐ शुद्धविद्यांकुराकारद्विजपंक्तिद्वयोज्ज्वलायै नमः ।।२५।।
ॐ कर्पूरवीटिकामोदसमाकर्षिदिगन्तरायै नमः ।
ॐ निजसंल्लापमाधुर्यविनिर्भर्त्सितकच्छप्यै नमः ।
ॐ मन्दस्मितप्रभापूरमज्जत्कामेशमानसायै नमः ।
ॐ अनाकलितसादृष्यचिबुकश्रीविराजितायै नमः ।
ॐ कामेशबद्धमांगल्यसूत्रशोभितकन्धरायै नमः ।।३०।।
ॐ कनकांगदकेयूरकमनीयभुजान्वितायै नमः ।
ॐ रत्नग्रैवेयचिन्ताकलोलमुक्ताफलान्वितायै नमः ।
ॐ कामेश्वरप्रेमरत्नमणिप्रतिपणस्तन्यै नमः ।
ॐ नाभ्यालवालरोमालिलताफलकुचद्वय्यै नमः ।
ॐ लक्ष्यरोमलताधारतासमुन्नेयमध्यमायै नमः ।
ॐ स्तनभारदलन्मध्यपट्टबन्धवलित्रयायै नमः ।
ॐ अरुणारुणकौसुम्भवस्त्रभास्वत्कटीतट्यै नमः ।
ॐ रत्नकिंकिणिकारम्यरशनादामभूषितायै नमः ।
ॐ कामेशज्ञातसौभाग्यमार्दवोरुद्वयान्वितायै नमः ।
ॐ माणिक्यमुकुटाकारजानुद्वयविराजितायै नमः ।
ॐ इन्द्रगोपपरीक्षिप्तस्मरतूणाभजंघिकायै नमः ।
ॐ गूढगुल्फायै नमः ।
ॐ कूर्मपृष्ठजयिष्णुप्रपदान्वितायै नमः ।
ॐ नखदीधितिसञ्छन्ननमज्जनतमोगुणायै नमः ।
ॐ पदद्वयप्रभाजालपराकृतसरोरुहायै नमः ।।४५।।
ॐ शिञ्जानमणिमंजीरमण्डितश्रीपदाम्बुजायै नमः
ॐ मरालीमन्दगमनायै नमः
ॐ महालावण्यशेवधये नमः
ॐ सर्वारुणायै नमः
ॐ अनवद्यांग्यै नमः
ॐ सर्वाभरणभूषितायै नमः
ॐ शिवकामेश्वरांकस्थायै नमः
ॐ शिवायै नमः

ॐ स्वाधीनवल्लभायै नमः

ॐ सुमेरुमध्यशृंगस्थायै नमः ।।५५।।

ॐ श्रीमन्नगरनायिकायै नमः

ॐ चिन्तामणिगृहान्तस्थायै नमः

ॐ पञ्चब्रह्मासनस्थितायै नमः

ॐ महापद्माटवीसंस्थायै नमः

ॐ कदम्बवनवासिन्यै नमः

ॐ सुधासागरमध्यस्थायै नमः

ॐ कामाक्ष्यै नमः

ॐ कामदायिन्यै नमः

ॐ देवर्षिगणसंघातस्तूयमानात्मवैभवायै नमः ।

ॐ भण्डासुरवधोद्युक्तशक्तिसेनासमन्वितायै नमः ।।६५।।

ॐ सम्पत्करीसमारूढसिन्धुरव्रजसेवितायै नमः ।

ॐ अश्वारूढाधिष्ठिताश्वकोटिकोटिभिरावृतायै नमः ।

ॐ चक्रराजरथारूढसर्वायुधपरिष्कृतायै नमः ।

ॐ गेयचक्ररथारूढमन्त्रिणीपरिसेवितायै नमः ।

ॐ किरिचक्ररथारूढदण्डनाथापुरस्कृतायै नमः ।।७०।।

ॐ ज्वालामालिनिकाक्षिप्तबह्निप्राकारमध्यगायै नमः ।

ॐ भण्डसैन्यवधोद्युक्तशक्तिविक्रमहर्षितायै नमः ।

ॐ नित्यापराक्रमाटोपनिरीक्षणसमुत्सुकायै नमः ।

ॐ भण्डपुत्रवधोद्युक्तबालाविक्रमनन्दितायै नमः ।

ॐ मन्त्रिण्यम्बाविरचितविषंगवधतोषितायै नमः ।

ॐ विशुक्रप्राणहरणवाराहीवीर्यनन्दितायै नमः ।

ॐ कामेश्वरमुखालोककल्पितश्रीगणेश्वरायै नमः ।

ॐ महागणशनिर्भिन्नविघ्नयंत्रप्रहर्षितायै नमः ।

ॐ भण्डासुरेन्द्रनिर्मुक्तशस्त्रप्रत्यस्त्रवर्षिण्यै नमः ।

ॐ करांगुलिनखोत्पन्ननारायणदशाकृत्यै नमः ।।८०।।

ॐ महापाशुपतास्त्राग्निनिर्दग्धापुरसैनिकायै नमः ।

ॐ कामेश्वरास्त्रनिर्दग्धसभण्डासुरशून्यकायै नमः ।

ॐ ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्रादिदेवसंस्तुतवैभवायै नमः ।

ॐ हरनेत्राग्निसंदग्धकामसंजीवनौषध्यै नमः ।

ॐ श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपंकजायै नमः ।

ॐ कण्ठाधःकटिपर्यन्तमध्यकूटस्वरूपिण्यै नमः ।

ॐ शक्तिकूटैकतापन्नकट्यधोभागधारिण्यै नमः ।

ॐ मूलमंत्रात्मिकायै नमः
ॐ मूलकूटत्रयकलेवरायै नमः
ॐ कुलामृतैकरसिकायै नमः ।।९०।।
ॐ कुलसंकेतपालिन्यै नमः
ॐ कुलांगनायै नमः
ॐ कुलान्तस्थायै नमः
ॐ कौलिन्यै नमः
ॐ कुलयोगिन्यै नमः
ॐ अकुलायै नमः
ॐ समयान्तस्थायै नमः
ॐ समयाचारतत्परायै नमः
ॐ मूलाधारैकनिलयायै नमः
ॐ ब्रह्मग्रन्थिविभेदिन्यै नमः ।।१००।।
ॐ मणिपूरान्तरुदितायै नमः
ॐ विष्णुग्रन्थिविभेदिन्यै नमः
ॐ आज्ञाचक्रान्तरालस्थायै नमः
ॐ रुद्रग्रन्थिविभेदिन्यै नमः
ॐ सहस्राराम्बुजारूढायै नमः
ॐ सुधासाराभिवर्षिण्यै नमः
ॐ तडिल्लतासमरुच्यै नमः
ॐ षट्चक्रोपरिसंस्थितायै नमः
ॐ महाशक्त्यै नमः
ॐ कुण्डलिन्यै नमः ।।११०।।
ॐ विसतन्तुतनीयस्यै नमः
ॐ भवान्यै नमः
ॐ भावनागम्यायै नमः
ॐ भवारण्यकुठारिकायै नमः
ॐ भद्रप्रियायै नमः
ॐ भद्रमूर्त्तय नमः
ॐ भक्तसौभाग्यदायिन्यै नमः
ॐ भक्तिप्रियायै नमः
ॐ भक्तिगम्यायै नमः
ॐ भक्तिवश्यायै नमः ।।१२०।।
ॐ भयापहायै नमः
ॐ शाम्भव्यै नमः
ॐ शारदाराध्यायै नमः
ॐ शर्वाण्यै नमः
ॐ शर्मदायिन्यै नमः
ॐ शांकर्यै नमः
ॐ श्रीकर्यै नमः
ॐ साध्व्यै नमः
ॐ शरच्चन्द्रनिभाननायै नमः
ॐ शातोदर्यै नमः ।।१३०।।
ॐ शान्तिमत्यै नमः
ॐ निराधारायै नमः
ॐ निरञ्जनायै नमः
ॐ निर्लेपायै नमः
ॐ निर्मलायै नमः
ॐ नित्यायै नमः
ॐ निराकारायै नमः
ॐ निराकुलायै नमः
ॐ निर्गुणायै नमः
ॐ निष्कलायै नमः ।।१४०।।
ॐ शान्तायै नमः
ॐ निष्कामायै नमः
ॐ निरुपप्लवायै नमः
ॐ नित्यमुक्तायै नमः
ॐ निर्विकारायै नमः
ॐ निष्प्रपञ्चायै नमः
ॐ निराश्रयायै नमः
ॐ नित्यशुद्धायै नमः
ॐ नित्यबुद्धायै नमः
ॐ निरवद्यायै नमः ।।१५०।।

ॐ निरन्तरायै नमः
ॐ निष्कारणायै नमः
ॐ निष्कलंकायै नमः
ॐ निरुपाधये नमः
ॐ निरीश्वरायै नमः
ॐ नीरागायै नमः
ॐ रागमथन्यै नमः
ॐ निर्मदायै नमः
ॐ मदनाशिन्यै नमः
ॐ निश्चिंतायै नमः
ॐ निरहंकारायै नमः
ॐ निर्मोहायै नमः
ॐ मोहनाशिन्यै नमः
ॐ निर्ममायै नमः
ॐ ममताहन्त्र्यै नमः
ॐ निष्पापायै नमः
ॐ पापनाशिन्यै नमः
ॐ निष्क्रोधायै नमः
ॐ क्रोधशमन्यै नमः
ॐ निर्लोभायै नमः ।।१७०।।
ॐ लोभनाशिन्यै नमः
ॐ निःसंशयायै नमः
ॐ संशयघ्न्यै नमः
ॐ निर्भवायै नमः
ॐ भवनाशिन्यै नमः
ॐ निर्विकल्पायै नमः
ॐ निराबाधायै नमः
ॐ निर्भेदायै नमः
ॐ भेदनाशिन्यै नमः
ॐ निर्नाशायै नमः ।।१८०।।
ॐ मृत्युमथन्यै नमः
ॐ निष्क्रियायै नमः
ॐ निष्परिग्रहायै नमः
ॐ निस्तुलायै नमः
ॐ नीलचिकुरायै नमः
ॐ निरपायायै नमः
ॐ निरत्ययायै नमः
ॐ दुर्लभायै नमः
ॐ दुर्गमायै नमः
ॐ दुर्गायै नमः ।।१९०।।
ॐ दुःखहन्त्र्यै नमः
ॐ सुखप्रदायै नमः
ॐ दुष्टदूरायै नमः
ॐ दुराचारशमन्यै नमः
ॐ दोषवर्जितायै नमः
ॐ सर्वज्ञायै नमः
ॐ सान्द्रकरुणायै नमः
ॐ समानाधिकवर्जितायै नमः
ॐ सर्वशक्तिमय्यै नमः
ॐ सर्वमंगलायै नमः ।।२००।।
ॐ सद्गतिप्रदायै नमः
ॐ सर्वेश्वर्यैः नमः
ॐ सर्वमय्यै नमः
ॐ सर्वमंत्रस्वरूपिण्यै नमः
ॐ सर्वयंत्रात्मिकायै नमः
ॐ सर्वतन्त्ररूपायै नमः
ॐ मनोन्मन्यै नमः
ॐ माहेश्वर्यै नमः
ॐ महादेव्यै नमः
ॐ महालक्ष्म्यै नमः ।।२१०।।
ॐ मृडप्रियायै नमः
ॐ महारूपायै नमः
ॐ महापूज्यायै नमः
ॐ महापातकनाशिन्यै नमः
ॐ महामायायै नमः
ॐ महाशक्त्यै नमः
ॐ महासत्त्वायै नमः

ॐ महारत्यै नमः
ॐ महाभोगायै नमः
ॐ महैश्वर्यायै नमः ।।२२०।।
ॐ महावीर्यायै नमः
ॐ महाबलायै नमः
ॐ महाबुद्ध्यै नमः
ॐ महासिद्ध्यै नमः
ॐ महायोगीश्वरेश्वर्यैः नमः
ॐ महातन्त्रायै नमः
ॐ महामन्त्रायै नमः
ॐ महायन्त्रायै नमः
ॐ महासनायै नमः
ॐ महायागक्रमाराध्यायै नमः ।।२३०।।
ॐ महाभैरवपूजितायै नमः
ॐ महेश्वरमहाकल्पमहाताण्डव–
साक्षिण्यै नमः
ॐ महाकामेशमहिष्यै नमः
ॐ महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः
ॐ चतुःषष्ट्युपचाराढ्यायै नमः
ॐ चतुःषष्टिकलामय्यै नमः
ॐ महाचतुःषष्टिकोटियोगिनी–
गणसेवितायै नमः
ॐ मनुविद्यायै नमः
ॐ चन्द्रविद्यायै नमः
ॐ चन्द्रमण्डलमध्यगायैनमः ।।२४०।।
ॐ चारुरूपायै नमः
ॐ चारुहासायै नमः
ॐ चारुचन्द्रकलाधरायै नमः
ॐ चराचरजगन्नाथायै नमः
ॐ चक्रराजनिकेतनायै नमः
ॐ पार्वत्यै नमः
ॐ पद्मनयनायै नमः
ॐ पद्मरागसमप्रभायै नमः
ॐ पञ्चप्रेतासनासीनायै नमः
ॐ पञ्चब्रह्मस्वरूपिण्यैनमः ।।२५०।।
ॐ चिन्मय्यै नमः
ॐ परमानन्दायै नमः
ॐ विज्ञानधनरूपिण्यै नमः
ॐ ध्यानध्यातृध्येयरूपायै नमः
ॐ धर्माधर्मविवर्जितायै नमः
ॐ विश्वरूपायै नमः
ॐ जागरिण्यै नमः
ॐ स्वपन्त्यै नमः
ॐ तैजसात्मिकायै नमः
ॐ सुप्तायै नमः ।।२६०।।
ॐ प्राज्ञात्मिकायै नमः
ॐ तुर्यायै नमः
ॐ सर्वावस्थाविवर्जितायै नमः
ॐ सृष्टिकर्त्र्यै नमः
ॐ ब्रह्मरूपायै नमः
ॐ गोप्त्र्यै नमः
ॐ गोविन्दरूपिण्यै नमः
ॐ संहारिण्यै नमः
ॐ रुद्ररूपायै नमः
ॐ तिरोधानकर्यै नमः ।।२७०।।
ॐ ईश्वर्यै नमः
ॐ सदाशिवायै नमः
ॐ अनुग्रहदायै नमः
ॐ पञ्चकृत्यपरायणायै नमः
ॐ भानुमण्डलमध्यस्थायै नमः
ॐ भैरव्यै नमः
ॐ भगमालिन्यै नमः
ॐ पद्मासनायै नमः

ॐ भगवत्यै नमः
ॐ पद्मनाभसहोदर्यै नमः ॥२८०॥
ॐ उन्मेषनिमिषोत्पन्नविपन्न–
भुवनावल्यै नमः
ॐ सहस्रशीर्षवदनायै नमः
ॐ सहस्राक्ष्यै नमः
ॐ सहस्रपदे नमः
ॐ आब्रह्मकीटजनन्यै नमः
ॐ वर्णाश्रमविधायिन्यै नमः
ॐ निजाज्ञारूपनिगमायै नमः
ॐ पुण्यापुण्यफलप्रदायै नमः
ॐ श्रुतिसीमन्तसिन्दूरीकृत–
पादाब्जधूलिकायै नमः
ॐ सकलागमसंदोहशुक्ति–
संपुटमौक्तिकायै नमः ॥२९०॥
ॐ पुरुषार्थप्रदायै नमः
ॐ पूर्णायै नमः
ॐ भोगिन्यै नमः
ॐ भुवनेश्वर्यै नमः
ॐ अम्बिकायै नमः
ॐ अनादिनिधनायै नमः
ॐ हरिब्रह्मेन्द्रसेवितायै नमः
ॐ नारायण्यै नमः
ॐ नादरूपायै नमः
ॐ नामरूपविवर्जितायै नमः
ॐ ह्रींकार्यै नमः
ॐ ह्रीमत्यै नमः
ॐ हृद्यायै नमः
ॐ हेयोपादेयवर्जितायै नमः
ॐ राजराजार्चितायै नमः
ॐ राज्ञ्यै नमः
ॐ रम्यायै नमः
ॐ राजीवलोचनायै नमः
ॐ रञ्जन्यै नमः
ॐ रमण्यै नमः ॥३१०॥
ॐ रस्यायै नमः
ॐ रणत्किंकिणिमेखलायै नमः
ॐ रमायै नमः
ॐ राकेन्दुवदनायै नमः
ॐ रतिरूपायै नमः
ॐ रतिप्रियायै नमः
ॐ रक्षाकर्यै नमः
ॐ राक्षसघ्न्यै नमः
ॐ रामायै नमः
ॐ रमणलम्पटायै नमः ॥३२०॥
ॐ काम्यायै नमः
ॐ कामकलारूपायै नमः
ॐ कदम्बकुसुमप्रियायै नमः
ॐ कल्याण्यै नमः
ॐ जगतीकन्दायै नमः
ॐ करुणारससागरायै नमः
ॐ कलावत्यै नमः
ॐ कलालापायै नमः
ॐ कान्तायै नमः
ॐ कादम्बरीप्रियायै नमः
ॐ वरदायै नमः
ॐ वामनयनायै नमः
ॐ वारुणीमदविह्वलायै नमः
ॐ विश्वाधिकायै नमः
ॐ वेदवेद्यायै नमः
ॐ विन्ध्याचलनिवासिन्यै नमः
ॐ विधात्र्यै नमः
ॐ वेदजनन्यै नमः
ॐ विष्णुमायायै नमः
ॐ विलासिन्यै नमः ॥३४०॥

ॐ क्षेत्रस्वरूपायै नमः
ॐ क्षेत्रेश्यै नमः
ॐ क्षेत्रक्षेत्रज्ञपालिन्यै नमः
ॐ क्षयवृद्धिविनिर्मुक्तायै नमः
ॐ क्षेत्रपालसमर्चितायै नमः
ॐ विजयायै नमः
ॐ विमलायै नमः
ॐ वन्द्यायै नमः
ॐ वन्दारुजनवत्सलायै नमः
ॐ वाग्वादिन्यै नमः ॥३५०॥
ॐ वामकेश्यै नमः
ॐ वह्निमण्डलवासिन्यै नमः
ॐ भक्तिमत्कल्पलतिकायै नमः
ॐ पशुपाशविमोचि यै नमः
ॐ संहृताशेषपाख डायै नमः
ॐ सदाचारप्रवर्तिकायै नमः
ॐ तापत्रयाग्निसंतप्तसमाह्लादन–
चन्द्रिकायै नमः
ॐ तरुण्यै नमः
ॐ तापसाराध्यायै नमः
ॐ तनुमध्यायै नमः ॥३६०॥
ॐ तमोपहायै नमः
ॐ चित्यै नमः
ॐ तत्पदलक्षार्थायै नमः
ॐ चिदेकरसरूपिण्यै नमः
ॐ स्वात्मानन्दलवीभूतब्रह्माद्या–
नन्दसंतत्यै नमः
ॐ परायै नमः
ॐ प्रत्यक्चितिरूपायै नमः
ॐ पश्यन्त्यै नमः
ॐ परदेवतायै नमः
ॐ मध्यमायै नमः ॥३७०॥
ॐ वैखरीरूपायै नमः
ॐ भक्तमानसहंसिकायै नमः
ॐ कामेश्वरप्राणनाड्यै नमः
ॐ कृतज्ञायै नमः
ॐ कामपूजितायै नमः
ॐ श्रृंगाररससम्पूर्णायै नमः
ॐ जयायै नमः
ॐ जालन्धरस्थितायै नमः
ॐ ओड्याणपीठनिलयायै नमः
ॐ बिन्दुमण्डलवासिन्यै नमः ॥३८०॥
ॐ रहोयागक्रमाराध्यायै नमः
ॐ रहस्तर्पणतर्पितायै नमः
ॐ सद्यःप्रसादिन्यै नमः
ॐ विश्वसाक्षिण्यै नमः
ॐ साक्षिवर्जितायै नमः
ॐ षडंगदेवतायुक्तायै नमः
ॐ षाड्गुण्यपरिपूरितायै नमः
ॐ नित्यक्लिन्नायै नमः
ॐ निरुपमायै नमः
ॐ निर्वाणसुखदायिन्यै नमः ॥३९०॥
ॐ नित्याषोडशिकारूपायै नमः
ॐ श्रीकण्ठार्धशरीरिण्यै नमः
ॐ प्रभावत्यै नमः
ॐ प्रभारूपायै नमः
ॐ प्रसिद्धायै नमः
ॐ परमेश्वर्यै नमः
ॐ मूलप्रकृत्यै नमः
ॐ अव्यक्तायै नमः
ॐ व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिण्यै नमः
ॐ व्यापिन्यै नमः ॥४००॥
ॐ विविधिकारायै नमः
ॐ विद्याविद्यास्वरूपिण्यै नमः
ॐ महाकामेशनयनकुमुदाह्लाद–
कौमुद्यै नमः

ॐ भक्तहार्दतमोभेदभानुमद्भानु–
संतत्यै नमः
ॐ शिवदूत्यै नमः
ॐ शिवाराध्यायै नमः
ॐ शिवमूर्त्यै नमः
ॐ शिवंकर्यै नमः
ॐ शिवप्रियायै नमः
ॐ शिवपरायै नमः ।।४१०।।
ॐ शिष्टेष्टायै नमः
ॐ शिष्टपूजितायै नमः
ॐ अप्रमेयायै नमः
ॐ स्वप्रकाशायै नमः
ॐ मनोवाचामगोचरायै नमः
ॐ चिच्छक्त्यै नमः
ॐ चेतनारूपायै नमः
ॐ जडशक्त्यै नमः
ॐ जड़ात्मिकायै नमः
ॐ गायत्र्यै नमः।।४२०।।
ॐ व्याहृत्यै नमः
ॐ संध्यायै नमः
ॐ द्विजवृन्दनिषेवितायै नमः
ॐ तत्वासनायै नमः
ॐ तस्मै नमः
ॐ तुभ्यं नमः
ॐ अय्यै नमः
ॐ पञ्चकोशान्तरस्थितायै नमः
ॐ निस्सीममहिम्ने नमः
ॐ नित्ययौवनायै नमः ।।४३०।।
ॐ मदशालिन्यै नमः
ॐ मदघूर्णितरक्ताक्ष्यै नमः
ॐ मदपाटलगण्डभुवे नमः
ॐ चन्दनद्रवदिग्धांग्यै नमः
ॐ चाम्पेयकुसुम प्रियायै नमः
ॐ कुशलायै नमः
ॐ कोमलाकारायै नमः
ॐ कुरुकुल्लायै नमः
ॐ कुलेश्वर्यै नमः
ॐ कुलकुण्डालयायै नमः ।।४४०।।
ॐ कौलमार्गतत्परसेवितायै नमः
ॐ कुमारगणनाथाम्बायै नमः
ॐ तुष्ट्यै नमः
ॐ पुष्ट्यै नमः
ॐ मत्यै नमः
ॐ धृत्यै नमः
ॐ शान्त्यै नमः
ॐ स्वस्तिमत्यै नमः
ॐ कान्त्यै नमः
ॐ नन्दिन्यै नमः ।।४५०।।
ॐ विघ्ननाशिन्यै नमः
ॐ तेजोवत्यै नमः
ॐ त्रिनयनायै नमः
ॐ लोलाक्षीकामरूपिण्यै नमः
ॐ मालिन्यै नमः
ॐ हंसिन्यै नमः
ॐ मात्रे नमः
ॐ मलयाचलवासिन्यै नमः
ॐ सुमुख्यै नमः
ॐ नलिन्यै नमः ।।४६०।।
ॐ सुभ्रुवे नमः
ॐ शोभनायै नमः
ॐ सुरनायिकायै नमः
ॐ कालकण्ठ्यै नमः
ॐ कान्तिमत्यै नमः
ॐ क्षोभिण्यै नमः
ॐ सूक्ष्मरूपिण्यै नमः
ॐ बज्रेश्वर्यै नमः

ॐ वामदेव्यै नमः
ॐ वयोवस्थाविवर्जितायै नमः। ।४७०।।
ॐ सिद्धेश्वर्यै नमः
ॐ सिद्धविद्यायै नमः
ॐ सिद्धमात्रे नमः
ॐ यशस्विन्यै नमः
ॐ विशुद्धचक्रनिलयायै नमः
ॐ आरक्तवर्णायै नमः
ॐ त्रिलोचनायै नमः
ॐ खट्वांगादिप्रहरणायै नमः
ॐ वदनैकसमन्वितायै नमः
ॐ पायसान्नप्रियायै नमः ।।४८०।।
ॐ त्वक्स्थायै नमः
ॐ पशुलोकभयंकर्यै नमः
ॐ अमृतादिमहाशक्तिसंवृतायै नमः
ॐ डाकिनीश्वर्यै नमः
ॐ अनाहताब्जनिलयायै नमः
ॐ श्यामाभायै नमः
ॐ वदनद्वयायै नमः
ॐ दंष्ट्रोज्ज्वलायै नमः
ॐ अक्षमालादिधरायै नमः
ॐ रुधिरसंस्थितायै नमः ।।४९०।।
ॐ कालरात्र्यादिशक्त्योघवृतायै नमः
ॐ स्निग्धौदनप्रियायै नमः
ॐ महावीरेन्द्रवरदायै नमः
ॐ राकिण्यम्बास्वरूपिण्यै नमः
ॐ मणिपूराब्जनिलयायै नमः
ॐ वदनत्रयसंयुतायै नमः
ॐ वज्रादिकायुधोपेतायै नमः
ॐ डामर्यादिभिरावृतायै नमः
ॐ रक्तवर्णायै नमः
ॐ मांसनिष्ठायै नमः ।।५००।।
ॐ गुडान्नप्रीतिमानसायै नमः
ॐ समस्तभक्तसुखदायै नमः
ॐ लाकिन्यम्बास्वरूपिण्यै नमः
ॐ स्वाधिष्ठानाम्बुजगतायै नमः
ॐ चतुर्वक्त्रमनोहरायै नमः
ॐ शूलाद्यायुधसम्पन्नायै नमः
ॐ पीतवर्णायै नमः
ॐ अतिगर्वितायै नमः
ॐ मेदोनिष्ठायै नमः
ॐ मधुप्रीतायै नमः ।।५१०।।
ॐ वन्दिन्यादिसमन्वितायै नमः
ॐ दध्यन्नासक्तहृदयायै नमः
ॐ काकिनीरूपधारिण्यै नमः
ॐ मूलाधाराम्बुजारूढायै नमः
ॐ पंचवक्त्रायै नमः
ॐ अस्थिसंस्थितायै नमः
ॐ अंकुशादिप्रहरणायै नमः
ॐ वरदादिनिषेवितायै नमः
ॐ मुद्गौदनासक्तचित्तायै नमः
ॐ साकिन्यम्बास्वरूपिण्यै –
नमः ।।५२०।।
ॐ आज्ञाचक्राब्जनिलयायै नमः
ॐ शुक्लवर्णायै नमः
ॐ षडाननायै नमः
ॐ मज्जासंस्थायै नमः
ॐ हंसवतीमुख्यशक्ति–
समन्वितायै नमः
ॐ हरिद्रान्नैकरसिकायै नमः
ॐ हाकिनीरूपधारिण्यै नमः
ॐ सहस्रदलपद्मस्थायै नमः
ॐ सर्ववर्णोपशोभितायै नमः
ॐ सर्वायुधधरायै नमः ।। ५३०।।
ॐ शुक्रसंस्थितायै नमः

ॐ सर्वतोमुख्यै नमः
ॐ सर्वौदनप्रीतिचित्तायै नमः
ॐ याकिन्यम्बास्वरूपिण्यै नमः
ॐ स्वाहा नमः
ॐ स्वधा नमः
ॐ अमत्यै नमः
ॐ मेधायै नमः
ॐ श्रुत्यै नमः
ॐ स्मृत्यै नमः ।।५४०।।
ॐ अनुत्तमायै नमः
ॐ पुण्यकीर्त्यै नमः
ॐ पुण्यलभ्यायै नमः
ॐ पुण्यश्रवणकीर्तनायै नमः
ॐ पुलोमजार्चितायै नमः
ॐ बन्धमोचन्यै नमः
ॐ बर्बरालकायै नमः
ॐ विमर्शरूपिण्यै नमः
ॐ विद्यायै नमः
ॐ वियदादिजगत्प्रसुवे नमः ।।५५०।।
ॐ सर्वव्याधिप्रशमन्यै नमः
ॐ सर्वमृत्युनिवारिण्यै नमः
ॐ अग्रगण्यायै नमः
ॐ अचिन्त्यरूपायै नमः
ॐ कलिकल्मषनाशिन्यै नमः
ॐ कात्यायन्यै नमः
ॐ कालहन्त्र्यै नमः
ॐ कमलाक्षनिषेवितायै नमः
ॐ ताम्बूलपूरितमुख्यै नमः
ॐ दाडिमीकुसुमप्रभायैनमः ।।५६०।।
ॐ मृगाक्ष्यै नमः
ॐ मोहिन्यै नमः
ॐ मुख्यायै नमः
ॐ मृडान्यै नमः
ॐ मित्ररूपिण्यै नमः
ॐ नित्यतृप्तायै नमः
ॐ भक्तनिधये नमः
ॐ नियंत्र्यै नमः
ॐ निखिलेश्वर्यै नमः
ॐ मैत्र्यादिवासनालभ्यायै –
नमः ।।५७०।।
ॐ महाप्रलयसाक्षिण्ये नमः
ॐ परस्यैशक्त्यै नमः
ॐ परायैनिष्ठायै नमः
ॐ प्रज्ञानघनरूपिण्यै नमः
ॐ माध्वीपानालसायै नमः
ॐ मत्तायै नमः
ॐ मातृकावर्णरूपिण्यै नमः
ॐ महाकैलासनिलयायै नमः
ॐ मृणालमृदुदोर्लतायै नमः
ॐ महनीयायै नमः ।।५८० ।।
ॐ दयामूर्त्यै नमः
ॐ महासाम्राज्यशालिन्यै नमः
ॐ आत्मविद्यायै नमः
ॐ महाविद्यायै नमः
ॐ श्रीविद्यायै नमः
ॐ कामसेवितायै नमः
ॐ श्रीषोड्शाक्षरीविद्यायै नमः
ॐ त्रिकूटायै नमः
ॐ कामकोटिकायै नमः
ॐ कटाक्षकिंकरीभूतकमला–
कोटिसेवितायै नमः।।५९०।।
ॐ शिरः स्थितायै नमः ।
ॐ चन्द्रनिभायै नमः
ॐ भालस्थायै नमः
ॐ इन्द्रधनुप्रभायै नमः
ॐ हृदयस्थायै नमः

ॐ रविप्रख्यायै नमः
ॐ त्रिकोणान्तरदीपिकायै नमः
ॐ दाक्षायण्यै नमः
ॐ दैत्यहन्त्र्यै नमः
ॐ दक्षयज्ञविनाशिन्यै नमः ।।६००।।
ॐ दरान्दोलितदीर्घाक्ष्यै नमः
ॐ दरहासोज्ज्वलन्मुख्यै नमः
ॐ गुरुमूर्त्तये नमः
ॐ गुणनिधये नमः
ॐ गोमात्रे नमः
ॐ गुहजन्मभुवे नमः
ॐ देवेश्यै नमः
ॐ दण्डनीतिस्थायै नमः
ॐ दहराकाशरूपिण्यै नमः
ॐ प्रतिपन्मुख्यराकान्ततिथि–
मंडलपूजितायै नमः ।।६१०।।
ॐ कलात्मिकायै नमः
ॐ कलानाथायै नमः
ॐ काव्यालापविनोदिन्यै नमः
ॐ सचामररमावाणीसव्य–
दक्षिणसेवितायै नमः
ॐ आदिशक्त्यै नमः
ॐ अमेयायै नमः
ॐ आत्मने नमः
ॐ परमायै नमः
ॐ पावनाकृतये नमः
ॐ अनेककोटिब्रह्माण्ड–
जनन्यै नमः
ॐ दिव्यविग्रहायै नमः
ॐ क्लींकार्यै नमः
ॐ केवलायै नमः
ॐ गुह्यायै नमः
ॐ कैवल्यपददायिन्यै नमः
ॐ त्रिपुरायै नमः
ॐ त्रिजगद्वन्द्यायै नमः
ॐ त्रिमूर्त्तये नमः
ॐ त्रिदशेश्वर्यै नमः
ॐ त्र्यक्षर्यै नमः ।।६३०।।
ॐ दिव्यगन्धाढ्यायै नमः
ॐ सिन्दूरतिलकाञ्चितायै नमः
ॐ उमायै नमः
ॐ शैलेन्द्रतनयायै नमः
ॐ गौर्यै नमः
ॐ गन्धर्वसेवितायै नमः
ॐ विश्वगर्भायै नमः
ॐ स्वर्णगर्भायै नमः
ॐ अवरदायै नमः
ॐ वागधीश्वर्यै नमः ।।६४०।।
ॐ ध्यानगम्यायै नमः
ॐ अपरिच्छेद्यायै नमः
ॐ ज्ञानदायै नमः
ॐ ज्ञानविग्रहायै नमः
ॐ सर्ववेदान्तसंवेद्यायै नमः
ॐ सत्यानन्दस्वरूपिण्यै नमः
ॐ लोपामुद्रार्चितायै नमः
ॐ लीलाक्लृप्तब्रह्मांड–
मंडलायै नमः
ॐ अदृश्यायै नमः
ॐ दृष्यरहितायै नमः ।।६५०।।
ॐ विज्ञात्र्यै नमः
ॐ वेद्यवर्जितायै नमः
ॐ योगिन्यै नमः
ॐ योगदायै नमः
ॐ योग्यायै नमः
ॐ योगानन्दायै नमः
ॐ युगन्धरायै नमः

ॐ इच्छाशक्तिज्ञानशक्तिक्रियाशक्ति–
स्वरूपिण्यै नमः
ॐ सर्वाधारायै नमः
ॐ सुप्रतिष्ठायै नमः ।।६६०।।
ॐ सदसद्रूपधारिण्यै नमः
ॐ अष्टमूर्त्यै नमः
ॐ अजाजेत्र्यै नमः
ॐ लोकयात्राविधायिन्यै नमः
ॐ एकाकिन्यै नमः
ॐ भूमरूपायै नमः
ॐ निर्द्वैतायै नमः
ॐ द्वैतवर्जितायै नमः
ॐ अन्नदायै नमः
ॐ वसुदायै नमः ।।६७०।।
ॐ वृद्धायै नमः
ॐ ब्रह्मात्मैक्यस्वरूपिण्यै नमः
ॐ बृहत्यै नमः
ॐ ब्राह्मण्यै नमः
ॐ ब्राह्म्यै नमः
ॐ ब्रह्मानन्दायै नमः
ॐ बलिप्रियायै नमः
ॐ भाषारूपायै नमः
ॐ वृहत्सेनायै नमः
ॐ भावाभावविवर्जितायै नमः ।।६८०।।
ॐ सुखाराध्यायै नमः
ॐ शुभकर्यै नमः
ॐ शोभनायैसुलभायैगत्यै नमः
ॐ राजराजेश्वर्यै नमः
ॐ राज्यदायिन्यै नमः
ॐ राजवल्लभायै नमः
ॐ राजत्कृपायै नमः
ॐ राजपीठनिवेशितनिजाश्रितायै नमः
ॐ राज्यलक्ष्म्यै नमः
ॐ कोशनाथायै नमः ।।६९०।।
ॐ चतुरंगबलेश्वर्यै नमः
ॐ साम्राज्यदायिन्यै नमः
ॐ सत्यसन्धायै नमः
ॐ सागरमेखलायै नमः
ॐ दीक्षितायै नमः
ॐ दैत्यशमन्यै नमः
ॐ सर्वलोकवशंकर्यै नमः
ॐ सर्वार्थदात्र्यै नमः
ॐ सावित्र्यै नमः
ॐ सच्चिदानन्दरूपिण्यै नमः।।७००।।
ॐ देशकालापरिच्छिन्नायै नमः
ॐ सर्वगायै नमः
ॐ सर्वमोहिन्यै नमः
ॐ सरस्वत्यै नमः
ॐ शास्त्रमय्यै नमः
ॐ गुहाम्बायै नमः
ॐ गुह्यरूपिण्यै नमः
ॐ सर्वोपाधिविनिर्मुक्तायै नमः
ॐ सदाशिवपतिव्रतायै नमः
ॐ सम्प्रदायेश्वर्यै नमः ।।७१०
ॐ साधुने नमः
ॐ यै नमः
ॐ गुरुमण्डलरूपिण्यै नमः
ॐ कुलोत्तीर्णायैः नमः
ॐ भगाराध्यायै नमः
ॐ मायायै नमः
ॐ मधुमत्यै नमः
ॐ मह्यै नमः
ॐ गणाम्बायै नमः
ॐ गुह्यकाराध्यायै नमः ।।७२०।।
ॐ कोमलांग्यै नमः

ॐ गुरुप्रियायै नमः
ॐ स्वतंत्रायै नमः
ॐ सर्वतन्त्रेश्यै नमः
ॐ दक्षिणामूर्त्तिरूपिण्यै नमः
ॐ सनकादिसमाराध्यायै नमः
ॐ शिवज्ञानप्रदायिन्यै नमः
ॐ चित्कलायै नमः
ॐ आनन्दकलिकायै नमः
ॐ प्रेमरूपायै नमः ।।७३०।।
ॐ प्रियंकर्यै नमः
ॐ नामपारायणप्रीतायै नमः
ॐ नन्दिविद्यायै नमः
ॐ नटेश्वर्यै नमः
ॐ मिथ्याजगदधिष्ठानायै नमः
ॐ मुक्तिदायै नमः
ॐ मुक्तिरूपिण्यै नमः
ॐ लास्यप्रियायै नमः
ॐ लयकर्यै नमः
ॐ लज्जायै नमः ।।७४०।।
ॐ रम्भादिवन्दितायै नमः
ॐ भवदावसुधावृष्ट्यै नमः
ॐ पापारण्यदवानलायै नमः
ॐ दौर्भाग्यतूलवातूलायै नमः
ॐ ज्वराध्वान्तरविप्रभायै नमः
ॐ भाग्याब्धिचन्द्रिकायै नमः
ॐ भक्तचित्तकेकीघनाघनायै नमः
ॐ रोगपर्वतदम्भोलये नमः
ॐ मृत्युदारुकुठारिकायै नमः
ॐ महेश्वर्यै नमः ।।७५०।।
ॐ महाकाल्यै नमः
ॐ महाग्रासायै नमः
ॐ महाशनायै नमः
ॐ अपर्णायै नमः
ॐ चण्डिकायै नमः
ॐ चण्डमुण्डासुरनिषूदिन्यै नमः
ॐ क्षराक्षरात्मिकायै नमः
ॐ सर्वलोकेश्यै नमः
ॐ विश्वधारिण्यै नमः
ॐ त्रिवर्गदात्र्यै नमः ।।७६०।।
ॐ सुभगायै नमः
ॐ त्र्यंबकायै नमः
ॐ त्रिगुणात्मिकायै नमः
ॐ स्वर्गापवर्गदायै नमः
ॐ शुद्धायै नमः
ॐ जपापुष्पनिभाकृतये नमः
ॐ ओजोवत्यै नमः
ॐ द्युतिधरायै नमः
ॐ यज्ञरूपायै नमः
ॐ प्रियव्रतायै नमः ।।७७०।।
ॐ दुराराध्यायै नमः
ॐ दुराधर्षायै नमः
ॐ पाटलीकुसुमप्रियायै नमः
ॐ महत्यै नमः
ॐ मेरुनिलयायै नमः
ॐ मन्दारकुसुमप्रियायै नमः
ॐ वीराराध्यायै नमः
ॐ विराड्रूपायै नमः
ॐ विरजसे नमः
ॐ विश्वतोमुख्यै नमः ।।७८०।।
ॐ प्रत्यक्रूपायै नमः
ॐ पराकाशायै नमः
ॐ प्राणदायै नमः
ॐ प्राणरूपिण्यै नमः
ॐ मार्तण्डभैरवाराध्यायै नमः
ॐ मन्त्रिणीन्यस्तधुरे नमः
ॐ त्रिपुरेश्यै नमः

ॐ जयत्सेनायै नमः
ॐ निस्त्रैगुण्यायै नमः
ॐ परापरायै नमः ।।७९०।।
ॐ सत्यज्ञानानन्दरूपायै नमः
ॐ सामरस्यपरायणायै नमः
ॐ कपर्दिन्यै नमः
ॐ कलामालायैः नमः
ॐ कामदुहे नमः
ॐ कामरूपिण्यै नमः
ॐ कलानिधये नमः
ॐ काव्यकलायै नमः
ॐ रसज्ञायै नमः
ॐ रसशेवधये नमः ।।८००।।
ॐ पुष्टायै नमः
ॐ पुरातनायै नमः
ॐ पूज्यायै नमः
ॐ पुष्करायै नमः
ॐ पुष्करेक्षणायै नमः
ॐ परस्मैज्योतिषे नम
ॐ परस्मैधाम्ने नमः
ॐ परमाणवे नमः
ॐ परात्परायै नमः
ॐ पाशहस्तायै नमः ।।८१०।।
ॐ पाशहन्त्र्यै नमः
ॐ परमंत्रविभेदिन्यै नमः
ॐ मूर्तायै नमः
ॐ अमूर्तायै नमः
ॐ अनित्यतृप्तायै नमः
ॐ मुनिमानसहंसिकायै नमः
ॐ सत्यव्रतायै नमः
ॐ सत्यरूपायै नमः
ॐ सर्वान्तर्यामिन्यै नमः
ॐ सत्यै नमः ।।८२०।।
ॐ ब्रह्माण्यै नमः
ॐ ब्रह्मणे नमः
ॐ जनन्यै नमः
ॐ बहुरूपायै नमः
ॐ बुधार्चितायै नमः
ॐ प्रसवित्र्यै नमः
ॐ प्रचण्डायै नम
ॐ आज्ञायै नमः
ॐ प्रतिष्ठायै नमः
ॐ प्रकटाकृतये नमः ।।८३०।।
ॐ प्राणेश्वर्यै नमः
ॐ प्राणदात्र्यै नमः
ॐ पञ्चाशत्पीठरूपिण्यै नमः
ॐ विश्रृंखलायै नमः
ॐ विविक्तस्थायै नमः
ॐ वीरमात्रे नमः
ॐ वियत्प्रसुवे नमः
ॐ मुकुन्दायै नमः
ॐ मुक्तिनिलयायै नमः
ॐ मूलविग्रहरूपिण्यै नमः ।।८४०।।
ॐ भावज्ञायै नमः
ॐ भवरोगघ्न्यै नमः
ॐ भवचक्रप्रवर्त्तिन्यै नमः
ॐ छन्दसारायै नमः
ॐ शास्त्रसारायै नमः
ॐ मन्त्र सारायै नमः
ॐ तलोदर्यै नमः
ॐ उदारकीर्त्तये नमः
ॐ उद्दामवैभवायै नमः
ॐ वर्णरूपिण्यै नमः ।।८५०।।
ॐ जन्ममृत्युजरातप्तजन–
विश्रान्तिदायिन्यै नमः
ॐ सर्वोपनिषदुद्घुष्टायै नमः

ॐ शान्त्यतीतकलात्मिकायै नमः
ॐ गंभीरायै नमः
ॐ गगनान्तस्थायै नमः
ॐ गर्वितायै नमः
ॐ गानलोलुपायै नमः
ॐ कल्पनारहितायै नमः
ॐ काष्ठायै नमः
ॐ अकान्तायै नमः ।।८६०।।
ॐ कान्तार्धविग्रहायै नमः
ॐ कार्यकारणनिर्मुक्तायै नमः
ॐ कामकेलितरंगितायै नमः
ॐ कनत्कनकताटंकायै नमः
ॐ लीलाविग्रहधारिण्यै नमः
ॐ अजायै नमः
ॐ क्षयविनिर्मुक्तायै नमः
ॐ मुग्धायै नमः
ॐ क्षिप्रप्रसादिन्यै नमः
ॐ अन्तर्मुखसमाराध्यायै नमः ।।८७०।।
ॐ बहिर्मुखसुदुर्लभायै नमः
ॐ त्रय्यै नमः
ॐ त्रिवर्गनिलयायै नमः
ॐ त्रिस्थायै नमः
ॐ त्रिपुरमालिन्यै नमः
ॐ निरामयायै नमः
ॐ निरालम्बायै नमः
ॐ स्वात्मारामायै नमः
ॐ सुधासृत्यै नमः
ॐ संसारपंकनिर्मग्नसमुद्धरण–
पंडितायै नमः ।।८८०।।
ॐ यज्ञप्रियायै नमः
ॐ यज्ञकर्त्र्यै नमः
ॐ यजमानस्वरूपिण्यै नमः
ॐ धर्माधारायै नमः
ॐ धनाध्यक्षायै नमः
ॐ धनधान्यविवर्धिन्यै नमः
ॐ विप्रप्रियायै नमः
ॐ विप्ररूपायै नमः
ॐ विश्वभ्रमणकारिण्यै नमः
ॐ विश्वग्रासायै नमः ।।८९०।।
ॐ विद्रुमाभायै नमः
ॐ वैष्णव्यै नमः
ॐ विष्णुरूपिण्यै नमः
ॐ अयोन्यै नमः
ॐ योनिनिलयायै नमः
ॐ कूटस्थायै नमः
ॐ कुलरूपिण्यै नमः
ॐ वीरगोष्ठीप्रियायै नमः
ॐ वीरायै नमः
ॐ नैष्कर्म्यायैनमः ।।९००।।
ॐ नादरूपिण्यै नमः
ॐ विज्ञानकलनायै नमः
ॐ कल्यायै नमः
ॐ विदग्धायै नमः
ॐ वैन्दवासनायै नमः
ॐ तत्त्वाधिकायै नमः
ॐ तत्वमय्यै नमः
ॐ तत्त्वमर्थस्वरूपिण्यै नमः
ॐ सामगानप्रियायै नमः
ॐ सौम्यायै नमः ।।९१०।।
ॐ सदाशिवकुटुम्बिन्यै नमः
ॐ सव्यापसव्यमार्गस्थायै नमः
ॐ सर्वापद्विनिवारिण्यै नमः
ॐ स्वस्थायै नमः
ॐ स्वभावमधुरायै नमः
ॐ धीरायै नमः
ॐ धीरसमर्चितायै नमः

ॐ चैतन्यार्घ्यसमाराध्यायै नमः
ॐ चैतन्यकुसुमप्रियायै नमः
ॐ सदोदितायै नमः ॥९२०॥
ॐ सदातुष्टायै नमः
ॐ तरुणादित्यपाटलायै नमः
ॐ दक्षिणादक्षिणाराध्यायै नमः
ॐ दरस्मेरमुखाम्बुजायै नमः
ॐ कौलिनीकेवलायै नमः
ॐ अनर्घ्यकैवल्यपददायिन्यै नमः
ॐ स्तोत्रप्रियायै नमः
ॐ स्तुतिमत्यै नमः
ॐ श्रुतिसंस्तुतवैभवायै नमः
ॐ मनस्विन्यै नमः ॥९३०॥
ॐ मानवत्यै नमः
ॐ महेश्यै नमः
ॐ मंगलाकृतये नमः
ॐ विश्वमात्रे नमः
ॐ जगद्धात्र्यै नमः
ॐ विशालाक्ष्यै नमः
ॐ विरागिण्यै नमः
ॐ प्रगल्भायै नमः
ॐ परमोदारायै नमः
ॐ परमोदायै नमः ॥९४०॥
ॐ मनोमय्यै नमः
ॐ व्योमकेश्यै नमः
ॐ विमानस्थायै नमः
ॐ वज्रिण्यै नमः
ॐ वामकेश्वर्यै नमः
ॐ पञ्चयज्ञप्रियायै नमः
ॐ पञ्चप्रेतमञ्चाधिशायिन्यै नमः
ॐ पंचम्यै नमः
ॐ पंचभूतेश्यै नमः
ॐ पंचसंख्योपचारिण्यै नमः ॥९५०॥
ॐ शाश्वत्यै नमः
ॐ शाश्वतैश्वर्यायै नमः
ॐ शर्मदायै नमः
ॐ शम्भुमोहिन्यै नमः
ॐ धरायै नमः
ॐ धरसुतायै नमः
ॐ धन्यायै नमः
ॐ धर्मिण्यै नमः
ॐ धर्मवर्धिन्यै नमः
ॐ लोकातीतायै नमः ॥९६०॥
ॐ गुणातीतायै नमः
ॐ सर्वातीतायै नमः
ॐ शमात्मिकायै नमः
ॐ बन्धूककुसुमप्रख्यायै नमः
ॐ बालायै नमः
ॐ लीलाविनोदिन्यै नमः
ॐ सुमंगल्यै नमः
ॐ सुखकर्यै नमः
ॐ सुवेषाढ्यायै नमः
ॐ सुवासिन्यै नमः ॥९७०॥
ॐ सुवासिन्यर्चनप्रीतायै नमः
ॐ आशोभनायै नमः
ॐ शुद्धमानसायै नमः
ॐ बिन्दुतर्पणसंतुष्टायै नमः
ॐ पूर्वजायै नमः
ॐ त्रिपुराम्बिकायै नमः
ॐ दशमुद्रासमाराध्यायै नमः
ॐ त्रिपुराश्रीवशंकर्यै नमः
ॐ ज्ञानमुद्रायै नमः
ॐ ज्ञानगम्यायै नमः ॥९८०॥
ॐ ज्ञानज्ञेयस्वरूपिण्यै नमः
ॐ योनिमुद्रायै नमः
ॐ त्रिखण्डेश्यै नमः

ॐ त्रिगुणायै नमः
ॐ अम्बायै नमः
ॐ त्रिकोणगायै नमः
ॐ अनघायै नमः
ॐ अद्भुतचारित्र्यै नमः
ॐ वाञ्छितार्थप्रदायिन्यै नमः
ॐ अभ्यासातिशयज्ञातायै नमः ।।९९०।।
ॐ षडध्वातीतरूपिण्यै नमः
ॐ अव्याजकरुणामूर्त्तये नमः
ॐ अज्ञानध्वान्तदीपिकायै नमः
ॐ आबालगोपविदितायै नमः
ॐ सर्वानुल्लंघ्यशासनायै नमः
ॐ श्रीचक्रराजनिलयायै नमः
ॐ श्रीमत्रिपुरसुन्दर्यै नमः
ॐ श्रीशिवायै नमः
ॐ शिवशक्त्यैक्यरूपिण्यै नमः
ॐ श्रीललिताम्बिकायै नमः ।।१०००।।

इति श्रीललितासहस्रनामावलिः सम्पूर्णा

श्रीललितात्रिशतीस्तोत्रनामावलिः

अस्य श्रीललितात्रिशतीस्तोत्रमंत्रस्य हयग्रीवऋषये नमः शिरसि १। अनुष्टुप् छन्दसे नमः मुखे २। श्रीललिताम्बादेवतायै नमः हृदये । षोडशाक्षरी साधकानान्तु क ६ बीजाय गुह्ये । स ४ शक्तये पादयोः ह ६ कीलकाय नाभौ । श्रीललिताम्बाप्रसादसिद्धये जपे {पूजने, अर्चने} विनियोगाय सर्वांगे।।

कूटत्रयं द्विरावृत्य बालया वा षडंगद्वयम् ।।

अथ ध्यानम्

अतिमधुरचापहस्तामपरिमितमोदबाणसौभाग्याम् ।
अरुणामतिशयकरुणामभिनवकुलसुन्दरीं वन्दे ।।१।।

लमितिपंचोपचारैः सम्पूज्य

ऐं ह्रीं श्रीं

ॐ ककाररूपायै नमः
ॐ कल्याण्यै नमः
ॐ कल्याणगुणशालिन्यै नमः
ॐ कल्याणशैलनिलयायै नमः
ॐ कमनीयायै नमः
ॐ कलावत्यै नमः
ॐ कमलाक्ष्यै नमः
ॐ कल्मषघ्न्यै नमः
ॐ करुणामृतसागरायै नमः
ॐ कदम्बकाननावासायै नमः ।।१०।।
ॐ कदम्बकुसुमप्रियायै नमः
ॐ कंदर्पविद्यायै नमः
ॐ कंदर्पजनकापांगवीक्षणायै नमः
ॐ कर्पूरवीटीसौरभ्यकल्लोलितककुप्तटायै नमः
ॐ कलिदोषहरायै नमः
ॐ कञ्जलोचनायै नमः

ॐ कम्रविग्रहायै नमः
ॐ कर्मादिसाक्षिण्यै नमः
ॐ कारयित्र्यै नमः
ॐ कर्मफलप्रदायै नमः ।।२०।।
ॐ एकाररूपायै नमः
ॐ एकाक्षर्यै नमः
ॐ एकानेकाक्षराकृत्यै नमः
ॐ एतत्तदित्यनिर्देश्यायै नमः
ॐ एकानन्दचिदाकृत्यै नमः
ॐ एवमित्यागमाबोध्यायै नमः
ॐ एकभक्तिमदर्चितायै नमः
ॐ एकाग्रचित्तनिर्ध्यातायै नमः
ॐ एषणारहितादृतायै नमः
ॐ एलासुगन्धिचिकुरायै नमः ।।३०।।
ॐ एनःकूटविनाशिन्यै नमः
ॐ एकभोगायै नमः
ॐ एकरसायै नमः
ॐ एकैश्वर्यप्रदायिन्यै नमः
ॐ एकातपत्रसाम्राज्यप्रदायै नमः
ॐ एकान्तपूजितायै नमः
ॐ एधमानप्रभायै नमः
ॐ एजदनेकजगदीश्वर्यै नमः
ॐ एकवीरादिसंसेव्यायै नमः
ॐ एकप्राभवशालिन्यै नमः ।।४०।।
ॐ ईकाररूपायै नमः
ॐ ईशित्र्यै नमः
ॐ ईप्सितार्थप्रदायिन्यै नमः
ॐ ईदृगित्यविनिर्देश्यायै नमः
ॐ ईश्वरत्वविधायिन्यै नमः
ॐ ईशानादिब्रह्ममय्यै नमः
ॐ ईशित्वाद्यष्टसिद्धिदायै नमः
ॐ ईक्षित्र्यै नमः
ॐ ईक्षणसृष्टाण्डकोट्यै नमः
ॐ ईश्वरवल्लभायै नमः ।।५०।।
ॐ ईडितायै नमः
ॐ ईश्वरार्धांगशरीरायै नमः
ॐ ईशाधिदेवतायै नमः
ॐ ईश्वरप्रेरणकर्यै नमः
ॐ ईशताण्डवसाक्षिण्यै नमः
ॐ ईश्वरोत्संगनिलयायै नमः
ॐ ईतिबाधाविनाशिन्यै नमः
ॐ ईहाविरहितायै नमः
ॐ ईशशक्त्यै नमः
ॐ ईषत्स्मिताननायै नमः।।६०।।
ॐ लकाररूपायै नमः
ॐ ललितायै नमः
ॐ लक्ष्मीवाणीनिषेवितायै नमः
ॐ लाकिन्यै नमः
ॐ ललनारूपायै नमः
ॐ लसद्दाडिमपाटलायै नमः
ॐ ललन्तिकालसत्फालायै नमः
ॐ ललाटनयनार्चितायै नमः
ॐ लक्षणोज्ज्वलदिव्यांग्यै नमः
ॐ लक्षकोट्यण्डनायिकायै नमः।।७०।।
ॐ लक्षार्थायै: नमः
ॐ लक्षणागम्यायै नमः
ॐ लब्धकामायै नमः
ॐ लतातनवे नमः
ॐ ललामराजदलिकायै नमः
ॐ लम्बिमुक्तालताञ्चितायै नमः
ॐ लम्बोदरप्रसुवे नमः
ॐ लभ्यायै नमः
ॐ लज्जाढ्यायै नमः
ॐ लयवर्जितायै नमः ।।८०।।
ॐ ह्रींकाररूपायै नमः

ॐ ह्रींपदप्रियायै नमः
ॐ ह्रींकारबीजायै नमः
ॐ ह्रींकारमंत्रायै नमः
ॐ ह्रींकारलक्षणायै नमः
ॐ ह्रींकारजपसुप्रीतायै नमः
ॐ ह्रींमत्यै नमः
ॐ ह्रींविभूषणायै नमः
ॐ ह्रींशीलायै नमः ॥९०॥
ॐ ह्रींपदाराध्यायै नमः
ॐ ह्रींगर्भायै नमः
ॐ ह्रींपदाभिधायै नमः
ॐ ह्रींकारवाच्यायै नमः
ॐ ह्रींकारपूज्यायै नमः
ॐ ह्रींकारपीठिकायै नमः
ॐ ह्रींकारवेद्यायै नमः
ॐ ह्रींकारचिन्त्यायै नमः
ॐ ह्रीं नमः
ॐ ह्रींशरीरिण्यै नमः ॥१००॥
ॐ हकाररूपायै नमः
ॐ हलधृत्पूजितायै नमः
ॐ हरिणेक्षणायै नमः
ॐ हरिप्रियायै नमः
ॐ हराराध्यायै नमः
ॐ हरिब्रह्मेन्द्रसेवितायै नमः
ॐ हयारूढासेवितांघ्र्यै नमः
ॐ हयमेधसमर्चितायै नमः
ॐ हर्यक्षवाहनायै नमः
ॐ हंसवाहनायै नमः ॥११०॥
ॐ हतदानवायै नमः
ॐ हत्यादिपापशमन्यै नमः
ॐ हरिदश्वादिसेवितायै नमः
ॐ हस्तिकुम्भोत्तुंगकुचायै नमः
ॐ हस्तिकृत्तिप्रियांगनायै नमः
ॐ हरिद्राकुंकुमादिग्धायै नमः
ॐ हर्यश्वाद्यमरार्चितायै नमः
ॐ हरिकेशसख्यै नमः
ॐ हादिविद्यायै नमः
ॐ हालामदालसायै नमः ॥१२०॥
ॐ सकाररूपायै नमः
ॐ सर्वज्ञायै नमः
ॐ सर्वेश्यै नमः
ॐ सर्वमंगलायै नमः
ॐ सर्वकर्त्र्यै नमः
ॐ सर्वभर्त्र्यै नमः
ॐ सर्वहर्त्र्यै नमः
ॐ सनातन्यै नमः
ॐ सर्वानवद्यायै नमः
ॐ सर्वांगसुन्दर्यै नमः ॥१३०॥
ॐ सर्वसाक्षिण्यै नमः
ॐ सर्वात्मिकायै नमः
ॐ सर्वसौख्यदात्र्यै नमः
ॐ सर्वविमोहिन्यै नमः
ॐ सर्वाधारायै नमः
ॐ सर्वगतायै नमः
ॐ सर्वावगुणवर्जितायै नमः
ॐ सर्वारुणायै नमः
ॐ सर्वमात्रे नमः
ॐ सर्वभूषणभूषितायै नमः ॥१४०॥
ॐ ककारार्थायै नमः
ॐ कालहन्त्र्यै नमः
ॐ कामेश्यै नमः
ॐ कामितार्थदायै नमः
ॐ कामसञ्जीविन्यै नमः
ॐ कल्यायै नमः
ॐ कठिनस्तनमण्डलायै नमः

ॐ करभोरवे नमः
ॐ कलानाथमुख्यै नमः
ॐ कचजिताम्बुदायै नमः ॥१५०॥
ॐ कटाक्षस्यन्दिकरुणायै नमः
ॐ कपालिप्राणनायिकायै नमः
ॐ कारुण्यविग्रहायै नमः
ॐ कान्तायै नमः
ॐ कान्तिधूतजपावल्यै नमः
ॐ कलालापायै नमः
ॐ कम्बुकण्ठ्यै नमः
ॐ करनिर्जितपल्लवायै नमः
ॐ कल्पवल्लीसमभुजायै नमः
ॐ कस्तूरीतिलकाञ्चितायै नमः ॥१६०॥
ॐ हकारार्थायै नमः
ॐ हंसगत्यै नमः
ॐ हाटकाभरणोज्ज्वलायै नमः
ॐ हारहारिकुचाभोगायै नमः
ॐ हाकिन्यै नमः
ॐ हल्यवर्जितायै नमः
ॐ हरित्पतिसमाराध्यायै नमः
ॐ हठात्कारहतासुरायै नमः
ॐ हर्षप्रदायै नमः
ॐ हविर्भोक्त्र्यै नमः ॥१७०॥
ॐ हार्दसन्तमसापहायै नमः
ॐ हल्लीसलास्यसन्तुष्टायै नमः
ॐ हंसमंत्रार्थरूपिण्यै नमः
ॐ हानोपादाननिर्मुक्तायै नमः
ॐ हर्षिण्यै नमः
ॐ हरिसोदर्यै नमः
ॐ हाहाहूहूमुखस्तुत्यायै नमः
ॐ हानिवृद्धिविवर्जितायै नमः
ॐ हय्यंगवीनहृदयायै नमः
ॐ हरिगोपारुणांशुकायै नमः ॥१८०॥
ॐ लकाराख्यायै नमः
ॐ लतापूज्यायै नमः
ॐ लयस्थित्युद्भवेश्वर्यै नमः
ॐ लास्यदर्शनसंतुष्टायै नमः
ॐ लाभ्येभालाभविवर्जितायै नमः
ॐ लंघ्येतराज्ञायै नमः
ॐ लावण्यशालिन्यै नमः
ॐ लघुसिद्धिदायै नमः
ॐ लाक्षारससवर्णाभायै नमः
ॐ लक्ष्मणाग्रजपूजितायै नमः॥१९०॥
ॐ लभ्येतरायै नमः
ॐ लब्धभक्तिसुलभायै नमः
ॐ लांगलायुधायै नमः
ॐ लग्नचामरहस्तश्रीशारदा–
परिवीजितायै नमः
ॐ लज्जापदसमाराध्यायै नमः
ॐ लम्पटायै नमः
ॐ लकुलेश्वर्यै नमः
ॐ लब्धमानायै नमः
ॐ लब्धरसायै नमः
ॐ लब्धसम्पत्समुन्नत्यै नमः ॥२००॥
ॐ ह्रींकारिण्यै नमः
ॐ ह्रींकाराद्यायै नमः
ॐ ह्रींमध्यायै नमः
ॐ ह्रींशिखामणये नमः
ॐ ह्रींकारकुण्डाग्निशिखायै नमः
ॐ ह्रींकारशशिचन्द्रिकायै नमः
ॐ ह्रींकारभास्कररुच्यै नमः
ॐ ह्रींकाराम्भोदचंचलायै नमः
ॐ ह्रींकारकन्दांकुरिकायै नमः
ॐ ह्रींकारैकपरायणायै नमः ॥२१०॥
ॐ ह्रींकारदीर्घिकाहंस्यै नमः

ॐ ह्रींकारोद्यानकेकिन्यै नमः
ॐ ह्रींकारारण्यहरिण्यै नमः
ॐ ह्रींकारावालवल्लर्यै नमः
ॐ ह्रींकारपंजरशुक्यै नमः
ॐ ह्रींकारांगणदीपिकायै नमः
ॐ ह्रींकारकन्दरासिंह्यै नमः
ॐ ह्रींकाराम्भोजभृंगिकायै नमः
ॐ ह्रींकारसुमनोमाध्व्यै नमः
ॐ ह्रींकारतरुमञ्जर्यै नमः ॥२२०॥
ॐ सकाराख्यायै नमः
ॐ समरसायै नमः
ॐ सकलागमसंस्तुतायै नमः
ॐ सर्ववेदान्ततात्पर्यभूम्यै नमः
ॐ सदसदाश्रयायै नमः
ॐ सकलायै नमः
ॐ सच्चिदानन्दायै नमः
ॐ साध्व्यै नमः
ॐ सद्गतिदायिन्यै नमः
ॐ सनकादिमुनिध्येयायै नमः ॥२३०॥
ॐ सदाशिवकुटुम्बिन्यै नमः
ॐ सकलाधिष्ठानरूपायै नमः
ॐ सत्यरूपायै नमः
ॐ समाकृत्यै नमः
ॐ सर्वप्रपंचनिर्मात्र्यै नमः
ॐ समानाधिकवर्जितायै नमः
ॐ सर्वोत्तुंगायै नमः
ॐ संगहीनायै नमः
ॐ सगुणायै नमः
ॐ सकलेष्टदायै नमः ॥२४०॥
ॐ ककारिण्यै नमः
ॐ काव्यलोलायै नमः
ॐ कामेश्वरमनोहरायै नमः
ॐ कामेश्वरप्राणनाड्यै नमः
ॐ कामेशोत्संगवासिन्यै नमः
ॐ कामेश्वरालिंगितांग्यै नमः
ॐ कामेश्वरसुखप्रदायै नमः
ॐ कामेश्वरप्रणयिन्यै नमः
ॐ कामेश्वरविलासिन्यै नमः
ॐ कामेश्वरतपस्सिद्ध्यै नमः ॥२५०॥
ॐ कामेश्वरमनःप्रियायै नमः
ॐ कामेश्वरप्राणनाथायै नमः
ॐ कामेश्वरविमोहिन्यै नमः
ॐ कामेश्वरब्रह्मविद्यायै नमः
ॐ कामेश्वरगृहेश्वर्यै नमः
ॐ कामेश्वराह्लादकर्यै नमः
ॐ कामेश्वरमहेश्वर्यै नमः
ॐ कामेश्वर्यै नमः
ॐ कामकोटिनिलयायै नमः
ॐ कांक्षितार्थदायै नमः ॥२६०॥
ॐ लकारिण्यै नमः
ॐ लब्धरूपायै नमः
ॐ लब्धधियै नमः
ॐ लब्धवांछितायै नमः
ॐ लब्धपापमनोदूरायै नमः
ॐ लब्धाहंकारदुर्गमायै नमः
ॐ लब्धशक्त्यै नमः
ॐ लब्धदेहायै नमः
ॐ लब्धैश्वर्यसमुन्नत्यै नमः
ॐ लब्धवृद्ध्यै नमः ॥२७०॥
ॐ लब्धलीलायै नमः
ॐ लब्धयौवनशालिन्यै नमः
ॐ लब्धातिशयसर्वांगसौन्दर्यायै नमः
ॐ लब्धविभ्रमायै नमः

ॐ लब्धरागायै नमः
ॐ लब्धपत्यै नमः
ॐ लब्धानानागमस्थित्यै नमः
ॐ लब्धभोगायै नमः
ॐ लब्धसुखायै नमः
ॐ लब्धहर्षाभिपूरितायै नमः ॥२८०॥
ॐ ह्रींकारमूर्त्तये नमः
ॐ ह्रींकारसौधश्रृंगकपोतिकायै नमः
ॐ ह्रींकारदुग्धाब्धिसुधायै नमः
ॐ ह्रींकारकमलेन्दिरायै नमः
ॐ ह्रींकारमणिदीपार्चिषे नमः
ॐ ह्रींकारतरुशारिकायै नमः
ॐ ह्रींकारपेटकमणये नमः
ॐ ह्रींकारादर्शबिंबितायै नमः
ॐ ह्रींकारकोशासिलतायै नमः
ॐ ह्रींकारस्थाननर्तक्यै नमः ॥२९०॥
ॐ ह्रींकारशुक्तिकामुक्तामणये नमः
ॐ ह्रींकारबोधितायै नमः
ॐ ह्रींकारमणिसौवर्णस्तंभविद्रुमपुत्रिकायै नमः
ॐ ह्रींकारवेदोपनिषदे नमः
ॐ ह्रींकाराध्वरदक्षिणायै नमः
ॐ ह्रींकारनन्दनारामनवकल्पकवल्लर्यै नमः
ॐ ह्रींकारहिमवद्गंगायै नमः
ॐ ह्रींकारार्णवकौस्तुभायै नमः
ॐ ह्रींकारमंत्रसर्वस्वायै नमः
ॐ ह्रींकारपरसौख्यदायै नमः ॥३००॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्रीमद्रराजराजेश्वर्यै नमः

समाप्तम्

{इस भगवती ललिताके त्रिशती–स्तोत्रका पू. गुरुदेव इतना अधिक आदर करते थे कि उन्होंने श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्रीसे इसकी भगवत्पाद आदिशंकराचार्य कृत टीकाका हिन्दी अनुवाद कराके उसे राधामाधव सेवा संस्थान, गोरखपुरसे प्रकाशित कराया था}

दुर्वासा ॠषिका दर्शन

बात लगभग १९५१ ई. की है । दुपहरीमें, दिनमें, जब पू. गुरुदेव अपनी द्वितीय प्रहरकी पूजाके क्रमसे निवृत्त होते, हम लोग उनके पास चले जाते । कभी–कभी तो वे किसीसे बात करते होते एवं कभी अकेले ही होते। जब वे अकेले मिल जाते, उस दिन वे मुझे अपनी विलक्षण अनुभूतियाँ बताया करते ।

पू. गुरुदेव जब मातृसाधनामें होते तो उसमें पूर्णतया इतने तल्लीन हो जाते थे कि उस समय उनकी निमग्नता चरम सीमा बिन्दुको ही छूती रहती थी। उनकी श्रीक्रमकी पूजा तो प्रत्येक प्रहर लगभग सवा घण्टे अथवा डेढ़ घंटेकी होती थी । वह पूजा ज्योंही समाप्त होती, वे फिर अपनी मधुरभाव साधनामें तल्लीन हो जाते थे । मुझको अथवा राधेश्याम पालड़ीवालको वे अपनी मधुर अनुभूत लीलायें सुनाया करते । उनसे लीला सुनते समय हमें भी बाह्य जगत अथवा अपने किसी प्रापंचिक परिवेशकी स्मृति ही नहीं होती थी । गोपियाँ, नन्दभवन, यशोदाजी, वृषभानुपुर, कीर्तिदा मैया, वन, कुंजों, महलों, सभीके चित्र वे अपनी पट्टी पर लिख–लिखकर इस तरह जीवन्त वर्णन करते थे, मानो वे वहीं बैठे–बैठे सब प्रत्यक्ष नेत्रोंसे देख रहे हों और कह रहे हों । इस प्रकार घण्टों बीत जाते । बीचमें कभी किसी आगत व्यक्तिका व्यवधान होता तो उसे टाल दिया जाता । सांयकाल होने पर भिक्षाके लिये जब बुलावा आता तो वह क्रम भिक्षाके पश्चात् पुनः प्रारम्भ हो जाता था । जब लीला–कथायें चलती होतीं तो उन्हें पहचानना मुश्किल होता कि वे अभी डेढ़ घण्टे तक तन्त्र साधना करके उठे हैं ।

पू. गुरुदेवके सम्मुख गोपियाँ, उनकी बोली, हाव–भाव, चेष्टाएँ, उनकी संवेदनाएँ, दुख–सुख, ग्लानि, मान–अपमानके भाव, सब जीवन्त स्पष्ट होते थे। उस समय पू. गुरुदेव पूर्णतया भाव–देह गोपी ही होते थे । बात यह है– यथार्थ प्रेम–साधनाके लिये भाव–देह आवश्यक होती है । इस भाव–देहमें शास्त्रका कोई भी विधि–निषेध लागू ही नहीं होता । इस भाव–देहकी मायिक देहसे कोई तुलना ही नहीं होती । जब तक मायिक देहमें अभिमान रहता है, तब तक भाव–देह अथवा प्रेम–साधनाकी कल्पना ही करना नितान्त मूर्खता ही है ।

अतः पू. गुरुदेव जब भाव–देहमें होते थे, वे मायिक–आवरण अर्थात्

पांचभौतिक देहसे सर्वथा मुक्त, हटे हुए होते थे ।

पू. गुरुदेव इस पांचभौतिक आवरणसे सर्वथा मुक्त कैसे हुए ? यह प्रश्न मैंने उनसे किया था । उन्होंने इसका उत्तर यही दिया था कि इसमें भगवन्नाम–जप ही प्रधान साधना है । नाम–साधनासे ही {उच्चत्तम कोटिके संत} अथवा सद्‌गुरुकी प्राप्ति अथवा उनसे सम्बन्ध होता है । सद्‌गुरुसे सम्बन्ध हुए बिना अन्तरात्मामें प्रवेश होता ही नहीं । निरन्तर नाम–जप ही उच्चत्तम श्रेणीके संत या सद्‌गुरुकी कृपामें हेतु होता है । उच्चत्तम कोटिके सिद्ध सन्तकी प्राप्तिके पश्चात् मंत्रादि अथवा किसी भी क्रमसे दीक्षा होती है। दीक्षाके अनन्तर किसी न किसी प्रकारकी उपासनाका कार्य चलता है। इस उपासनासे भौतिक देहकी शुद्धि होती है । चित्त शुद्ध होने पर मायाका आवरण हट जाता है । इस आवरणके कारण ही प्रत्येक जीवका जो अपना भाव है, वह ढँका रहता है । आवरण हटते ही जीवका निज भाव खुल जाता है । आवरण हटने पर जो भाव–देह प्राप्त होती है, उसका स्वरूप कैसा होता है, इसका पता शास्त्रोंसे, उपदेशसे, दृष्टान्तोंसे समझाया नहीं जा सकता । यह भाव देह प्रत्येक आत्माकी पृथक्–पृथक् होती है । "क" की जो भाव–देह है वह "ख" की हो ही नहीं सकती ।

भावकी भी दो कोटियाँ हैं । भाव आश्रय एवं विषयका आलम्बन लेकर ही स्फुरित होता है । भावका जो आश्रय है, वही गोपी है, भक्त है। यह गोपी अथवा भक्त देहधारी है, परन्तु इसका देह मायिक नहीं है । यह अनिर्वचनीय विलक्षण देह है । न यह शास्त्रोंमें वर्णित स्थूल देह है, न ही सूक्ष्म देह है और न ही इसे कारण कहा जा सकता है । जैसे आत्माका स्थूल देहमें पूरा अभिमान होता है, उसी प्रकार भाव जागरणके अनन्तर उस आत्माका भाव–देहमें भी अभिमान रहता है । पू. गुरुदेवकी भी भावदेह थी, उसका स्वभाव था, उसमें उनका पूरा अभिमान था । उसका रूप था, रंग था, उसमें कैशोर वय थी, अंगोंमें कैशोर वय के सभी लक्षण प्रकट थे । परन्तु उनके इस भावदेहमें उनका जागतिक स्थूल देह तनिक भी विक्षेप नहीं करता था ।

पू. गुरुदेव उन दिनों मंजुश्यामा भावमें थे । ये सभी बातें सन् १९५१ की हैं । पू. गुरुदेवकी उस समय स्थूलदेहसे वय मात्र ३६ वर्षके युवककी थी। परन्तु वे अपने भावदेहसे कभी उन दिनों मात्र पाँच वर्षकी बालिका होते थे, कभी किशोरी । आश्रय भावसे जब वे मंजुश्यामा थे, तो उनके सम्मुख उनके माता–पिता, धाम, महल, वन, उपवन सभी इस प्रकार प्रकट थे, जैसे उनके स्थूलदेहके सम्मुख गोरखपुरकी वाटिका थी ।

यह भाव ही परिपक्व होकर पू. गुरुदेवके चित्तमें "प्रेम" के रूपमें परिणत

हो गया था । इस प्रेमकी स्थिति ठीक वैसी ही है, जैसी पुष्पमें सुवास या सुगन्धकी । भाव–गन्ध जब परिणत होकर प्रेम–रसका रूप धारण कर लेती है, भाव–मकरन्द प्रेम–मधुमें परिणत हो जाता है, तब वह प्रेम–पद वाच्य हो जाता है ।

पुष्पमें मधु अथवा रसका उदगम होनेसे जैसे भृंगको आकर्षित करना नहीं पड़ता, वह आप ही आप स्वतः आता है, उसी प्रकार भावके प्रेम–रूपमें प्रकट होते ही उसका विषय भगवत्स्वरूप प्रियतम स्वतः आविर्भूत हो जाता है, उसे पुकारना नहीं पड़ता ।

पू. गुरुदेवकी यही स्थिति थी । पू. गुरुदेव उस दिवस जब लीला सुना रहे थे तब उनकी देह मात्र पाँच वर्षकी बालिकाकी थी । वे उस दिन भक्तराज दुर्वासा ऋषिके ब्रज आगमनका वर्णन कर रहे थे । वे कह रहे थे – "एक बार श्रीदुर्वासाजी विचरण करते कालिन्दी परिसरमें नन्द भवनके पीछे पहुँच जाते हैं । ध्याननिष्ठ, परम तपस्वी, क्रोध–भट्टारक, अनुसूया जैसी महासतीके पुत्र महर्षि दुर्वासा परमाद्या भगवती त्रिपुरसुन्दरीके सर्वोच्च बारह उपासकोंमें से एक हैं । उनकी सर्व लोकोंमें निर्बाध गति है । महर्षि दुर्वासाने सिद्ध लोकोंमें चर्चा सुनी कि उनकी परमाराध्या भगवती ही श्रीकृष्ण रूप धारण करके ब्रजमें नन्दरायके पुत्र रूपमें अवतीर्ण हुई हैं । अतः वे जिज्ञासावश दर्शनार्थ ब्रजमें चले आये थे । वे अपनी इष्टदेवीके अवतार रूपको इधर–उधर अन्वेषण कर रहे थे ।

यह वर्णन श्रीकृष्णलीलाचिन्तनमेंसे अविकल उद्धृत है, क्योंकि उसे पू. गुरुदेवके शब्दोंमें ही देने की प्रामाणिकताका मोह संवरित नहीं कर पा रहा हूँ । पाठकोंके सम्मुख यह रहस्य प्रकट कर देनेमें मुझे हर्ष है कि श्रीकृष्णलीलाचिन्तनमें पू. गुरुदेवने जो कुछ वर्णन किया है, वह सब उनका स्वयंका प्रथमतः अनुभूत है और अपनी अनुभूतिको ही उन्होंने लिपिबद्ध किया है ।

"श्रीदुर्वासा देखते हैं कि यमुना पुलिनके सैकत–तट पर पंजर–मुक्त विहंगम शावकोंकी तरह गोप बालक चपल बाल–क्रीडामें रत हैं । छोटे–छोटे अबोध शिशुओंका परस्पर धूलि–बिखेरकर खेलना परम स्वाभाविक ही है । उनकी दृष्टि कुछ परिचारिकाओं पर भी पड़ी जो इनकी रखवाली भी कर रही थीं । साथ ही इनकी मनोहर बाल–क्रीड़ा देखकर मुग्ध हो रही थीं ।

महर्षिको देखकर इन परिचारिकाओंने उन्हें प्रणाम किया और निश्चिन्त होकर पुनः इन बालकोंकी क्रीड़ा रसपानमें लग गयीं ।

महर्षिकी दृष्टि एक परम सुन्दर नव मेघ वर्ण बालक पर पड़ती है ।

वह अति चंचल बालक अंजलिमें बालू भरकर लाता है और अपने एक गौरवर्ण सखाके सिर पर वह बालू पीछेसे चुपचाप डाल देता है । बालूकी एक कणिका इस गौरवर्ण बालक श्रीदामकी आँखोंमें गिर जाती है । अतः वह अपनी आँख मलता हुआ श्रीकृष्णको पकड़ने चलता है । श्रीकृष्ण इस बालकको अपने पास आया जान अपनी आँख मूँद कर बैठ जाते हैं । अब वह बालक श्रीकृष्णके सिर एवं पीठ पर बहुतसी बालू डाल देता है । मुनिवर दुर्वासा श्रीकृष्णचन्द्रकी बाल–क्रीड़ा देखते हुए विचारने लगते हैं – "क्या ये ही मेरी परात्पर चिज्ज्योतिका पूर्णावतार है ? ओह ! यह तो धूलिमें लोट रहा है । अनन्तानन्त ब्रह्माण्डोंको अपने उन्मेष एवं निमेषमें उदय और अस्तमित करनेवाली महाशक्तिको एक साधारण गोप बालकके भयसे आँख मूँदकर बैठा पाकर दुर्वासाजी विस्मित हो जाते हैं ।

समस्त अंग धूलि धूसरित हो रहे हैं, केश टेढ़े–मेढ़े हैं, श्रीअंगोंमें कोई वस्त्र नहीं, सर्वथा नग्न दिगम्बर वेश है, बालकोंके साथ दौड़ रहे हैं, भला परात्पर महाकामेश्वरांक–निलया, पंचप्रेतासनासीना, महासरस्वती–महालक्ष्मी, महागौरी–संसेव्या भगवतीको इस रूपमें पाकर महर्षि अनिश्चयमें भर गये उनके तपःपूत मनमें एक सन्देहकी रेखा झाँक ही गयी । भगवतीकी ही सर्व भुवन–मोहिनी महामायाने अपने ही पुत्र पर अपने अंचलकी यवनिका डाल हीदी । मुनिवर शान्त होकर विचार निमग्न हो गये ।

स ईश्वरोऽयं भगवान् कथं बालैर्लुठन भुवि ।
अयं तु नन्दपुत्रोऽस्ति न श्रीकृष्णः परात्परः ।।

यह मेरी परमाराध्या परमेश्वरी कदापि नहीं हो सकता । यदि यह परात्पर परमतत्व होता तो भूमि पर इस प्रकार पराजित हुआ क्यों लोटता ? एक साधारण गोप–बालकके भयसे नेत्र क्यों मूँद लेता ? यह बालक मात्र नन्दरायका पुत्र श्रीकृष्ण है, ईश्वर सर्वथा–सर्वथा नहीं है ।

इस प्रकार मुनिवर दुर्वासा संशयके झूलेमें झूलते हुए सत्यकी सीमाके उस पार अत्यन्त दूर जा गिरे ।

परन्तु धन्य भगवतीकी कृपा–वत्सलता ! अपने पुत्र को वे भ्रममें भी डालती हैं, परन्तु साथ ही उसका भ्रम निवारण भी वे ही करती हैं । अपने पुत्रको भला वे सत्य दर्शनसे कितने काल वंचित रखतीं ? सर्वज्ञता शक्ति श्रीकृष्णचन्द्रके नव–पल्लव जैसे परम सुकोमल कोनोंमें एक संकेत कर देती हैं, और लो, श्रीकृष्णचन्द्र दौड़ पड़ते हैं । महर्षिके पीछे और सखामण्डली भी श्रीकृष्णके पीछे उनका अनुगमन करती, वहीं पहुँच जाती है ।

एक विशाल कदम्बकी छायामें महर्षि शान्त खड़े हैं, उनकी अतिशय

गंभीर मुद्रा है । तपका तेज अंगोंसे झर रहा है। अतिशय गंभीर मुद्रा है। नेत्रोंमें एक विचित्र ज्योति है, किन्तु जैसे ही श्रीकृष्णचन्द्र समीप आते हैं, मुनिका सब कुछ बदल जाता है । शरीर काँपने लगता है । मुद्रा चञ्चल हो जाती है। अंगोंकी वह दीप्ति, नेत्रोंकी वह दिव्य ज्योति, विलीन हो जाती है । मुनि अनुभव करते हैं, मानो श्रीकृष्णचन्द्रके अंगोंकी महा-मरकत द्युतिमें उनका सर्वस्व घुल-मिल रहा है । महर्षि एक अनिर्वचनीय अवस्थामें समाहित होते जा रहे हैं ।

श्रीकृष्ण अत्यन्त निकट जाकर उनसे पूछते हैं – "साधुबाबा ! तुमने तो मेरा खेल देखा है, तुम्हीं बताओ, श्रीदाम मुझसे हार गया, न ?" श्रीकृष्णकी यह मधुर वाणी सुनकर तो महर्षिमें खड़े रहनेकी भी सामर्थ्य नहीं रहती । गिरते हुए से वे पुलिन रेणुकामें बैठ जाते हैं । अब तो श्रीकृष्ण अपनी नन्ही-नन्ही भुजाओंको उठाकर उनकी गोदमें चले जाते हैं । महर्षिकी श्वेत शुभ्र कूर्च देखकर उन्हें हँसी आ जाती है । वे खिल-खिलाकर हँसने लगते हैं । परन्तु यह क्या, इस मुसकानमें तो दुर्वासाको अघटन- घटना-पटीयसी परमाद्या महाशक्ति सर्वभवनसमर्था जगदम्बाके दर्शन हो जाते हैं । वे अनन्त ऐश्वर्य-निकेतना योगमाया मुनिराजको श्रीकृष्णतत्वका किंचित् प्रत्यक्ष कराने इस समय प्रकट होकर श्रीकृष्णके अधरोंकी मुसकानके रूपमें उन्हें दर्शन देती हैं । श्रीदुर्वासाको, श्रीकृष्णके अधरों पर विराजित वे महादेवी मात्र निज दर्शन ही नहीं देतीं, उन्हें अपने भीतर खींचकर अपने विलक्षण दिव्य धामका दर्शन भी कराती हैं । श्रीदुर्वासाजीके सम्मुख भगवती आद्याशक्ति का परमधाम श्रीपुर अपनी सम्पूर्ण विभुता लिये किंचित् परिवर्तनके साथ सर्व वैष्णवजनसेव्य गोलोक धामके रूपमें प्रकट हो जाता है। विस्तार भयसे यहाँ उसका वर्णन नहीं किया जा रहा है । वैष्णव पाठक इसे गर्गसंहिता एवं शाक्तजन इसीको त्रिपुरारहस्य {माहात्म्य खण्ड} में देख सकते हैं । इसका अतिसंक्षिप्त आंशिक विवरण पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा द्वारा रचित श्रीकृष्णलीलाचिन्तन ग्रन्थमें जो गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित है, देखा जा सकता है ।

देखते-देखते ही श्रीदुर्वासा श्रीकृष्णके मुखविवरमें प्रवेश कर जाते हैं। भगवती पराम्बा पीछेकी ओर कपाट लगा देती हैं । आगेका द्वार उन्मुक्त हो जाता है । शाक्त आगम शास्त्रोंमें महामायाके इसी कपाटको रोधिनी शक्ति कहा गया है । इस रोधिनी शक्तिके निवृत्त हुए बिना सत्य परतत्व अथवा अप्राकृत चिन्मय राज्यमें प्रवेश मिल ही नहीं सकता । श्रीदुर्वासाजी अपनेको सर्व ब्रह्माण्डोंके शिरोदेशमें अवस्थित, चिन्मय अप्राकृत गोलोक धामको घेरे, अनन्त अमृत समुद्रमें प्रवाहित पाते हैं । इस अमृतसमुद्रमें बहते-बहते वे पुनः

समाधिस्थ हो जाते हैं। वे इस अमृत जलराशिमें सन्तरण करते कोटि–कोटि ब्रह्माण्डोंको देखते हैं। फिर उन्हें विरजा तरंगिणीके दर्शन होते हैं। वृन्दारण्यके दर्शन होते हैं। शतश्रंग समन्वित गिरिराज गोवर्धनको वे नमन करते हैं। पारिजात वन श्रेणीसे भरे वनोंका दर्शन करते–करते वे चकित हो उठते हें। विचरणशील कामधेनु समूहको वे प्रणाम करते हैं। फिर वे अम्बिकावन, बहुलावन, काम्यवन, भाण्डीरवन, मधुवन, तालवन आदि तीस श्रीकृष्ण–लीला–स्थलियोंमें विचरण करते हुए ब्रह्मपर्वत चले आते हैं। ब्रह्मपर्वत स्थित वृषभानुबाबाके राजप्रासादका दर्शन करते–करते तो वे परम कृत–कृत्य हो उठते हैं। पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाके कथनानुसार श्रीदुर्वासा महर्षि वृषभानुपुरमें वृषभानुबाबाके अनेक दिवसों तक अतिथि रहे थे। उस समय वृषभानुबाबाने अपनी दोनों पुत्रियों–राधा एवं मञ्जुश्यामा पर ही उनकी सब सेवा सँभालका भार दिया था। प्रथम बार ही ज्यों ही महर्षिकी दृष्टि इन दोनों राज–पुत्रियों पर पड़ती है, वे पूर्णतया चमत्कृत हो जाते हैं।

उन्हें स्पष्ट अनुभव होता है कि वे मात्र साधारण राज–पुत्री नहीं हैं, वे साक्षात् उनकी परदेवता पराम्बाका निजलीलांगीकृत ललित वपु है। श्रीदुर्वासाजी वृषभानुबाबासे संकेत करते हैं कि उन्हें इन दोनों बालिकाओं सहित कुछ काल एकान्तमें रहने दिया जाय। तत्पश्चात् परम एकान्त हो जाने पर दोनों बालिकाओंको अपने सम्मुख समासीन करके वे उनका परमाद्याशक्तिके रूपमें चतुषष्ट्युपचार पद्धतिसे पूजन करने लगते हैं। पू. गुरुदेवको यह दर्शन इतना प्रत्यक्ष हुआ था कि जब वे इसका वर्णन मेरे सम्मुख कर रहे थे तो श्रीदुर्वासा ऋषिके अंगोंकी सूक्ष्म आकृति तकका, उनके वस्त्रोंका, हावभाव तकका स्पष्ट चित्रण वे करते जा रहे थे। वे खुली आँखों चिन्मय, अप्राकृत आकृति दोनों बालिकाओंकी भी सभी भावदशा बतला रहे थे। उनमें एक बालिका मंजुश्यामा तो वे ही स्वयं अपने भावदेहसे थे, अतः उन्हें सब कुछ प्रत्यक्ष ही दृष्टिगोचर हो रहा था।

पू. गुरुदेवने आगे जाकर ५–६ वर्ष पश्चात् अपने स्वरचित "जय–जय प्रियतम" काव्यमें भी इस लीलाका वर्णन किया है। इसे यहाँ ज्यों का त्यों उद्धृत किया जा रहा है।

पाकर मुनिका संकेत नृपति, रानीको लिये हुए प्रियतम।
बाहर उस सदन कक्षासे थे, आ गये हाथ जोडे प्रियतम॥
भीतर रह गयीं पुत्रियाँ दो, मुनिने आरंभ किया प्रियतम।
अर्चन उनका विह्वल होकर वाणीके पुष्पोंसे प्रियतम॥
गम्भीर हुई गोरी छोरी सुनती थी श्लोकोंको प्रियतम।

उनकी भगिनी साँवरी किन्तु रहं–रह कर हँस देती प्रियतम ।।
दो दण्ड बीतने पर सहसा मुनिकी जब गिरा रुकी प्रियतम ।
श्यामा छोरी चपला उनसे बोली मीठे स्वरमें प्रियतम ।।

उस समय पूजा करते समय मुनि दुर्वासाने किन श्लोकोंसे पूजा की थी – ये मंत्र पू. गुरुदेवने अपने जय–जय प्रियतम काव्यमें उल्लेख नहीं किये हैं, परन्तु मेरे सम्मुख इस लीलाका वर्णन करते समय वे दुर्वासाजी द्वारा बोले गये श्लोकोंका भी उच्चारण कर रहे थे।

मैंने उनसे प्रार्थना करके उन महर्षि दुर्वासा द्वारा की हुई भगवती पराम्बाकी पूजाके सब मंत्र लिख लिये थे । श्री दुर्वासाजी द्वारा जो पूजाक्रम {पद्धति} बोली गयी थी, उसका हिन्दी भावार्थ भी यहाँ दिया जा रहा है –

"ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्रैं ह्स्क्लीं ह्स्रौः महापद्मवनान्तस्थे कारणानन्दविग्रहे सर्वभूतहिते मातः ऐह्येहि परमेश्वरि ! श्रीललिता महात्रिपुरसुन्दरी पराभट्टारिकां आवाहयामि नमः ।।

मंत्र – ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्रैं **ह्स्क्लीं ह्स्रौः**

{ हे परम चिन्मय महापद्मवनमें निवास करने वाली ! हे कारणानन्द विग्रहा !! हे सर्वभूतोंका हित करनेमें निरन्तर निरत, माते !!! हे परमेश्वरि !!!! यहाँ उपस्थित होओ । मैं महात्रिपुरसुन्दरी पराभट्टारिका भगवती ललिताका आवाहन करता हूँ । परम प्रणाम । }

इसके पश्चात् श्रीदुर्वासाजी श्रीलोक मणिद्वीपके अन्तःकरणमें विराजित श्रीकामेश्वर भगवान्का–जो भगवती महात्रिपुरसुन्दरीके समान ही वेष, भूषण एवं आयुध धारण किये हैं, ध्यान करते हैं । श्रीचक्रराजका स्मरण करते हैं। वे अपनी गुरु परम्पराका स्मरण करते हैं और तब अपनी स्वामिनी स्वरूपा इन दोनों बालिकाओंके समीप खड़े हो जाते हैं ।

{यहाँ मूलविद्याका उल्लेख नहीं है । मूलविद्या मात्र गुरु–मुखसे दीक्षाके समय ही प्राप्त होती है । पू. गुरुदेवने भी मूल विद्याका प्रकाश नहीं किया था । श्रीदुर्वासा ऋषिने मन्त्रोच्चारण करते समय मूल विद्याका मानसी जप ही किया था । वैसे श्रीविद्याके द्वादश आचार्योंकी मूल विद्या भी भिन्न है। भारतवर्षमें भगवती लोपामुद्राकी हादि विद्या एवं भगवान् कामदेवकी कादि विद्याका ही सम्प्रदायोंमें प्रमुखतया प्रचलन है । आम्नाय मंत्रोंमें यद्यपि दुर्वासा विद्याका उल्लेख है, परन्तु वह मूल विद्या यहाँ दी नहीं जा रही है । यह सब भेद भी पू. गुरुदेवने ही प्रकट किया था । लेखक तो मात्र उनका ही चरणाश्रित रहा है ।}

शेष पूजा मंत्र ये हैं –

ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या आवाहिता भव !
ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या संस्थापिता भव !!
ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या संन्निधापिता भव !!!
ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या संन्निरुद्धा भव !!!!
ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या सम्मुखी भव !!!!!
ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या अनवगुण्ठिता भव !!!!!!

{हिन्दी भावार्थ}

हे महासरस्वती, महाकाली, महालक्ष्मी स्वरूपा भगवती परमाद्या, पराम्बा, मूल विद्यामंत्रस्वरूपा यहाँ आवाहित, संस्थापित, संनिधापित, संन्निरुद्ध, सम्मुख एवं अवगुण्ठन रहित होकर प्रकट होओ ।

इसके पश्चात् श्रीदुर्वासाजीने भगवतीको छः मुद्राओंका प्रदर्शन करते हुए प्रणाम किया । इन सभी मुद्राओंके मंत्र भी थे ।

ये मुद्रा मंत्र भी गुरुमुखसे प्राप्त होते हैं, अतः गोपनीय होनेसे प्रकट नहीं किये जा रहे हैं ।

{पू. गुरुदेवने यह पूजा वर्णन करते हुए मुझसे यह भी कहा था कि भावसे प्रतिदिन ही यह पूजा करनी चाहिये । चौसठ उपचारोंमें वर्णित सामग्री यदि अर्थाभाववश व्यवस्थित नहीं हो पावे तो वर्षमें एक दिवस धन्या–त्रयोदशीके दिन तो अवश्य ही इन उपचारोंसे पूजन किया जाना चाहिये । अशक्ततावश यह भी कोई नहीं कर पावे तो पुष्पोंको अथवा अक्षतोंको उपचारोंके रूपमें परिकल्पित करके मानसिक–पूजन अवश्य करें ।

१} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै पाद्यं कल्पयामि नमः

२} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै आभरणावरोपणं कल्पयामि नमः

३} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै सुगन्धितैलाभ्यंगं कल्पयामि नमः

४} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै मज्जनशाला – प्रवेशनं कल्पयामि नमः

५} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै मज्जन शालायाम् मणिपीठोपवेशनं कल्पयामि नमः

६} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै दिव्य स्नानीयोद्वर्त्तनं

कल्पयामि नमः

७} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै उष्णोदक स्नानं कल्पयामि नमः

८} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै कनक कलशच्युत सकल तीर्थोदक स्नानं {अभिषेकं} कल्पयामि नमः

{इस अभिषेकको करते समय पू. गुरुदेवने श्रीसूक्तके पाठका विधान बतलाया था । श्रीदुर्वासाजीने दोनों वृषभानु राजकन्याओंका अभिषेक अपने कमण्डलु जलसे किया था एवं श्रीसूक्तका ही पाठ किया था}

९} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै धौतवस्त्र परिमार्जनं कल्पयामि नमः

१०} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै अरुणदुकूल परिधानं कल्पयामि नमः

११} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै अरुण कुचोत्तरीयं कल्पयामि नमः

१२} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै आलेपमण्डपे प्रवेशनं कल्पयामि नमः

१३} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै आलेपमण्डपे मणिपीठोपवेशनं कल्पयामि नमः

१४} ऐं ह्रीं श्रींमूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै दिव्यगंध संर्वांगीण विलेपनं कल्पयामि नमः

१५} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै केशभारार्थम् कालागरु धूपं कल्पयामि नमः

१६} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै कुसुममालाः कल्पयामि नमः

१७} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै भूषणमण्डपे प्रवेशनं कल्पयामि नमः

१८} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै भूषणमण्डपे मणिपीठोपवेशनं कल्पयामि नमः

१९} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै नवमणिमुकुटं कल्पयामि नमः

२०} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै चन्द्रशकलं कल्पयामि नमः

२१} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै सीमन्ते सिन्दूरं

कल्पयामि नमः

२२} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै तिलकरत्नम् कल्पयामि नमः

२३} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै कालाञ्जनम् कल्पयामि नमः

२४} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै बाली युगलम् कल्पयामि नमः

२५} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै मणिकुण्डल युगलम् कल्पयामि नमः

२६} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै नासाभरणम् कल्पयामि नमः

२७} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै अधर–यावकं कल्पयामि नमः

२८} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै प्रथमभूषणं {मांगल्य सूत्रं} कल्पयामि नमः

२९} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै कनक चिन्ताकं कल्पयामि नमः

३०} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै पदकं कल्पयामि नमः

३१} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै महापदकं कल्पयामि नमः

३२} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै मुक्तावलिं कल्पयामि नमः

३३} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै एकावलिं कल्पयामि नमः

३४} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै छत्रवीरम् कल्पयामि नमः

३५} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै केयूर युगलं चतुष्टयम् कल्पयामि नमः

३६} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै वलयावलिम् कल्पयामि नमः

३७} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै उर्मिलावलिम् कल्पयामि नमः

३८} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै काञ्चीदामम् कल्पयामि

नमः

३९} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै कटिसूत्रम् कल्पयामि नमः

४०} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै सौभाग्याभरणं कल्पयामि नमः

४१} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै पादकटकं कल्पयामि नमः

४२} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै रत्ननूपुरं कल्पयामि नमः

४३} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै पादांगुलीयकं कल्पयामि नमः

४४} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै एक करे पाशं कल्पयामि नमः

४५} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै अन्य करे अंकुशं कल्पयामि नमः

४६} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै इतर करे पुण्ड्रेक्षुचापं कल्पयामि नमः

४७} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै अपर करे पुष्पबाणान् कल्पयामि नमः

४८} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै श्रीमन्माणिक्य पादुके कल्पयामि नमः

४९} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै स्वसमानवेषाभिः आवरणदेवताभिःसह महाचक्र अधिरोहणं कल्पयामि नमः

५०} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै कामेश्वरांक पर्यंकापवेशनं कल्पयामि नमः

५१} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै अमृतासव चषकं कल्पयामि नमः

५२} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै आचमनीयं कल्पयामि नमः

५३} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै कर्पूर वीटिकां कल्पयामि नमः

{एला लवंगकर्पूरकस्तूरीकेसरादिभिः जातीफलदलैः पूगैः लांगल्यूषण नागरैः चूर्णैः खदिरसारैश्च युक्ता कर्पूरवीटिका}

५४} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै आनन्दोल्लास विलासहासं कल्पयामि नमः
५५} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै मंगल आरार्त्तिकम् कल्पयामि नमः

{कलधौतादिभाजने कुंकुम चन्दनादि लिखितस्य अष्टदल षट्दल वा चतुर्दलादि अन्यतमस्य कमलस्य चन्द्राकार चरु गोलकवत्यां चणक मुद्गजुषि वा कर्णिकायां दलेषु च पयःशर्करा पिण्डीकृत यव गोधूम पिष्टो पादानकानि त्रिकोण शिर डमर्वाकृतीनि चतुरंगुलोत्सेधानि घृत पाचितानि नव सप्त पञ्च अन्यतम संख्यानि दीप पात्राणि निधाय तेषु गोघृतं कर्णप्रमितं आपूर्य कर्पूर गर्भितां वर्त्तिकां ह्रल्लेखया प्रज्ज्वाल्य–}

{हिन्दी भावार्थ}

श्रीदुर्वासाजी ने पहले स्वर्ण पात्रमें कुंकुम चन्दनादिसे अष्टदल, षट्दल अथवा चतुर्दलका कमल निर्माण किया, उसके चारों कोनोंमें चन्द्रमा, चरु, गोलक निर्माण किया तथा कमलके दलोंको एवं कर्णिकाको चना, मूँग, चावलसे भरा, जव एवं गेहूँके आटेमें दूध एवं चीनी मिलाकर उससे डमरूकी आकृतिके नौ, सात अथवा पाँच दीप पात्र निर्माण किये, उनको चार अंगुल घृतसे भरा फिर कर्पूर गर्भित बातीसे ह्रल्लेखासे जाज्वल्यमान किया – इसके पश्चात्

{रत्नेश्वरी मंत्र}

ऐं ह्रीं श्रीं श्रींह्रीं ग्लूं स्लूं म्लूं प्लूं न्लूं ह्रीं श्रीं इस त्र्यक्षरी प्रणव सहित नवाक्षरी रत्नेश्वरी विद्यासे उस आरतीको अभिमंत्रित करके श्रीदुर्वासाजीने उस आरतीको चक्रमुद्रा प्रदर्शित करके मूलमंत्रसे उसकी अभ्यर्चना करते हुए तत्पश्चात् ऐं ह्रीं श्रीं जगध्वनि मंत्र मातः स्वाहा, इस मंत्रसे गन्धाक्षतादिसे घंटा {उपकरण} की पूजा करके उसको बजाते हुए उस आरती पात्रको सिरसे लगाकर इसके पश्चात् स्तुति करते हुए

समस्त चक्रेशीयुते देवि नवात्मिके
आरार्त्तिकमिदं तुभ्यं गृहाण मम सिद्धये

नौ बार दोनों बालिकाओंकी मस्तकसे लेकर चरणोंतक घुमाते हुए आरतीकी । तत्पश्चात् उस आरती पात्रको दोनों बालिकाओंके दक्षिण भागमें रख दिया ।

५६} ऐं ह्रीं श्रीं श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै छत्रं कल्पयामि नमः
५७} ऐं ह्रीं श्रीं श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै चामर युगलं कल्पयामि नमः
५८} ऐं ह्रीं श्रीं श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै दर्पणम् कल्पयामि नमः

श्रीपोद्दारमहाराज एवं राधाबाबा

था खेल मनोहर वह, जिसमें गुरुदेव बने तुम थे, प्रियतम !

५९} ऐं ह्रीं श्रीं श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै तालवृन्तं कल्पयामि नमः

६०} ऐं ह्रीं श्रीं श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै गन्धम् कल्पयामि नमः

६१} ऐं ह्रीं श्रीं श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै पुष्पं कल्पयामि नमः

६२} ऐं ह्रीं श्रीं श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै धूपं कल्पयामि नमः

६३} ऐं ह्रीं श्रीं श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै दीपं कल्पयामि नमः

६४} ऐं ह्रीं श्रीं श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै नैवेद्यं कल्पयामि नमः

श्रीदुर्वासाजीने दोनों बालिकाओंके सम्मुख अपने दक्षिण हाथकी ओर चतुरस्र मण्डलका निर्माण किया, उसके ऊपर अपने योगबलसे उत्पन्न नैवेद्यको रत्नाधार पर रखकर उसे मूलमंत्रसे जलसे छिड़ककर 'वं' अमृत बीजसे धेनुमुद्रा दिखाकर अमृत बनाते हुए मूलमंत्रसे तीन बार अभिमंत्रित किया, फिर आपोवन देकर उपरोक्त मंत्रसे नैवेद्य अर्पित किया । इसके बाद पानीय एवं उत्तरापोषण एवं हस्त प्रक्षालन कराके आचमन कराया एवं तब ताम्बूलार्पण किया ।

वृषभानुबाबाकी कन्याओंके रूपमें श्रीदुर्वासाजी द्वारा इस प्रकार अपनी परमेष्ठी भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीकी चौसठ उपचारोंसे मानस पूजाकी गयी थी । श्रीदुर्वासाजी एक-एक उपचारका ध्यान करते हुए उन बालिकाओंके मस्तक पर पुष्पार्चन कर रहे थे और बालिकाएँ खड़ी-खड़ी हँस रही थीं । इस प्रकार सम्पूर्ण वृन्दावनका दर्शन करके श्रीदुर्वासा पुनः भगवती लीलाशक्तिकी प्रेरणासे श्रीकृष्णके मुखविवरसे बाहर आते हैं । वे देखते हैं कि गोपराज नन्दरायका पुत्र वैसे ही विलक्षण हँसी हँस रहा है । अब तो श्रीदुर्वासाजी परम कृतकृत्य हुए मन ही मन भगवतीके इस विलक्षण निजलीलांगीकृत ललित बाल नर विग्रहको नमन करते गहन वनमें बिदा हो जाते हैं ।

न्यासविद्याके परमाचार्य
पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा

ये सभी बातें पैंतालीस वर्ष पूर्वकी हैं । उन दिनों सत्संगियोंमें सर्वत्र सुननेमें आता था कि श्रीसेठजी जयदयालजी गोयनका निष्काम कर्मयोगके सूर्य हैं । श्रीपोद्दार महाराजको लोग भक्तमुकुटमणि मानते थे, श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी संकीर्त्तन सम्राट् कहलाते थे एवं श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती, श्रीमद्भागवतके मूर्धन्य पण्डित माने जाते थे । श्रीउडियाबाबा ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, माँ आनन्दमयी सिद्ध तान्त्रिक, स्वामी रामसुखदासजी गीताके मर्मज्ञ, श्रीशरणानन्दजी {प्रज्ञाचक्षु} तार्किक आस्तिक कहे जाते थे । एक दिवस मैंने अपने पूर्वाश्रमके मामाजी श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीसे प्रश्न किया –"मामाजी! अपने श्रीराधाबाबामें भी कोई न कोई ऐसी अद्वितीयता तो होगी, जिससे उपरोक्त अग्रगण्योंमें उन्हें भी कोई स्थान दिया जा सके ?"

मेरे {पूर्वाश्रमके} मामाजीने उत्तर दिया – "भैया, राधाबाबा न्यास–विद्याके असमोर्ध्व पण्डित हैं ।"

यह न्यासविद्या क्या होती है ? मेरी बात समझी हुई नहीं थी । वैसे ब्राह्मण होनेके नाते मुझे संध्या–गायत्रीकी शिक्षा देते समय अंगन्यास, करन्यास, हृदयन्यास सिखाया गया था, परन्तु उसमें असमोर्ध्वता सम्पादन कैसे संभव है, कुछ भी समझमें नहीं आ रहा था ।

मैं पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाके पास पहुँचा और उनसे मैंने न्यास विद्याकी शिक्षा देनेकी प्रार्थनाकी ।

पू. गुरुदेव उन दिनों मौन रहते थे, वे मात्र दो ही शब्द "राधा" ही बोला करते थे। उन्हें जो कुछ भी कहना होता स्लेट–पट्टी पर लिखकर समझाया करते थे । लम्बी वार्त्ता होने पर पहले वे अनेक स्लेट–पट्टियों पर अपना वक्तव्य लिख लेते, फिर पढ़नेको देते थे । उन्होंने कहा – "भैया, श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्ने एक श्लोककी अर्धालीमें यह बात स्पष्ट रूपसे समझायी है । भगवान् कहते हैं –"ज्ञानात् ध्यान विशिष्यते, ध्यानात् कर्मफलस्त्यागः, त्यागात् शान्तिरनन्तरम् ।"

भगवान्का वक्तव्य यह है कि किसीको ज्ञान तो हो जाय, किन्तु ज्ञानका ध्यान न रहे, वह ज्ञानको विस्मृत कर दे और प्रवाहमें पतितकी तरह

मन–इन्द्रियोंके विषयोंमें ही रमता रहे तो उसका ज्ञान मात्र वाचिक ही रह जाता है और उसकी गति विषयीके समान ही दुःख–सुखसे भरी होती है, इसीसे भगवान् इस वक्तव्यमें ज्ञान होने पर भी निरन्तर ज्ञानका ध्यान रखने पर जोर दे रहे हैं। अब ज्ञानका ध्यान करता हुआ भी प्राणी यदि कर्मफल रूपमें प्राप्त इस देहके अध्यासका त्याग नहीं करता है, तो उसे परम शान्तिकी उपलब्धि नहीं होती । कर्मफल, सुख–दुख, रोग–शोक, हानि–लाभ, यश–अपयश उसे अशान्त बनाये ही रहते हैं, अतः इस कर्मफल अर्थात देहके अध्यासका त्याग परमावश्यक है । यह देहाध्यासका विस्मरण ही न्यास है । अपनेमें पूर्णशक्ति, पूर्ण विभुत्व, पूर्ण समृद्धि, पूर्ण एवं नित्य जीवनको न्यस्त करना और अशक्तता, परिच्छिन्नता, दारिद्रय, अनित्यता {क्षणभंगुरता}का विस्मरण कर देना ही न्यास शिक्षाकी प्राथमिकी है ।

पू. श्रीगुरुदेवने श्रीशुकदेव–परीक्षित् संवादका संदर्भ देते हुए अपने वक्तव्यको अग्रसर किया । वे कहने लगे–जब व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजी सर्वथा अनाहूत ही मुमुक्षु परीक्षितके पास अवधूतवेशमें पहुँचे तो आश्चर्य एवं हर्षमें भरे श्रीपरीक्षितजी, श्रीशुकदेव महाराजसे गंगातट पर आसीन ऋषियोंके मध्य अति मार्मिक प्रश्न करते हैं –

"अतः प्रच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुं ।
पुरुषस्येह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा ।।
यच्छ्रोतव्यमथो जप्यं यत्कर्त्तव्यं नृभिः प्रभो ।
स्मर्त्तव्यं भजनीयं वा ब्रूहि यद्वा विपर्ययम् ।।

हे प्रभो ! आप योगियों {भगवान्से युक्त प्राणियों} के भी परम गुरु हैं, इसलिये मैं आपसे परम सिद्धिके स्वरूप और उसकी प्राप्तिके साधन–सम्बन्धमें यह प्रश्न {जिज्ञासा} कर रहा हूँ। प्रभो ! कृपाकर यह बतायें कि जो पुरुष मरणासन्न हैं, उनको क्या करना चाहिये ? वे किसका श्रवण, किसका जप करें। साथ ही मनुष्य मात्रके लिये क्या स्मरण करने योग्य एवं भजनीय है तथा उनका क्या कर्त्तव्य है, वे किन–किन अकर्त्तव्योंका त्याग करें ?"

इस समय श्रीपरीक्षितजी तक्षक नामक विषधर सरीसृप कीटसे भयभीत एवं मृत्यु मोहसे ग्रस्त थे । श्रीशुकदेवजी उन्हें अपनेमें भगवान्के विराट् स्वरूपका न्यास करनेका उपदेश करते हैं । पू. गुरुदेवका वक्तव्य था कि अपना वास्तविक जो स्वरूप भगवद्मायाजन्य अज्ञानसे विस्मृत हो चुका है, उसकी अपने भीतर अवधारणा करना ही न्यास है । यह न्यास अपने भीतर अपने ही परम सत्यको आवाहित करना ही है । प्रत्येक विराट् स्वतः जब अपने अल्पतममें निहित होता ही है तो अपनेको अल्प, मृत्युग्रस्त मानना घोर

अज्ञान ही है ।

अब: पू. गुरुदेव मुझे न्यासकी शिक्षा देने लगे । वे मुझे समझा रहे थे कि "तेरे शरीरका जलांश विराट् समुद्र-देवताका ही अंश है, अतः अपने जलांशको समुद्रमें न्यास करके अपने भीतर विराट् समुद्रको अनुभव कर । अपनेमें ठीक इसी प्रकार क्रमशः समग्र विराट् पंचभूतोंको एवं समग्र प्रकृतिको न्यस्त मान ले और इस सत्य अवधारणामें एक घड़ी, दो घड़ी स्थिर हो जा।" पू. गुरुदेव जब मुझे यह शिक्षा दे रहे थे, तब श्रीमाधवशरणजी श्रीवास्तव भी वहाँ थे । पू. गुरुदेवने श्रीमाधवशरणजीसे श्रीशुकदेवोक्त श्लोकोंको शनैः शनैः मन्दगतिसे पढ़नेको कहा । पू. गुरुदेवने मुझसे एवं श्रीमाधवजी दोनोंसे कहा कि इस विराट् रूपमें स्थिर हुए हम श्रीशुकदेवजी महाराजकी अनुभूतिसे अपनी एकात्मता करें ।

श्रीमाधवशरणजी श्रीमद्भागवतके श्लोक उच्चारण कर रहे थे और हम दोनों ही अपने सर्वांगोंमें भगवान्‌के विराट् स्वरूपको न्यस्त देख रहे थे ।

पातालमेतस्य हि पादमूलं पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलं ।
महातलौ विश्वसृजोऽथ गुल्फौ, तलातलं वै पुरुषस्य जंघे ।।
द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्त्तेरुरुद्वयं वितलं चातलं च ।
महीतलं तज्जघनं महीपते, नभस्तलं नाभिसरो गृणन्ति ।।

हम दोनों गहन विचारमें डूबे थे और अनुभव कर रहे थे कि हमारे पैरोंमें विराट् पुरुषके तलवे, एड़ियाँ, एडीके ऊपरकी गाँठें {गुल्फ}, जंघाएँ, जानु, उरु, पेडू एवं नाभि आदि सभी अंग न्यस्त हो चुके हैं और विश्व ब्रह्माण्डके रसातल, सुतल, पाताल, महातल, तलातल, महीतल सभी लोक हमारे तत्तद् अंगोंमें न्यस्त हैं । अपनेमें सभी लोक लोकान्तरोंका न्यास करते हुए यद्यपि हम भावना ही कर रहे थे, परन्तु हमारी भावना परम सत्यका ही प्रकाश थी, अतः उसे सत्य कहनेमें संकोच ही क्या था ? असत्य तो हमारी क्षणभंगुर, परिच्छिन्न, अल्प देह कीटबुद्धि ही थी ।

तनिकसे गंभीर विचारके उत्थित होते ही यह बात तो स्पष्ट ही समझमें आ रही थी कि यह मानव नरदेहका परम कारण तो परमात्माका विराट् स्वरूप ही है । किरणके अल्पतम प्रकाशका उद्गम जैसे निश्चय ही सूर्य है, वैसे ही प्रत्येक अल्पतम आकृति रखने वाला कीट भी परमात्माकी ही अनन्त गति शक्तिसे गतिमान है । परमात्मामें निहित जीवशक्ति ही उसे जीवन्त कर रही है और परमात्मामें निहित कालशक्तिमें ही उसका अस्तित्व विलयको प्राप्त होता है ।

कोई भी अल्प किरण अपनेको प्रकाशकी स्रष्टा समझने लगे, यह तो

उसकी वज्रमूढ़ता ही है, किरण सूर्यमें है, सूर्यसे है और सूर्य रूप ही है । यह बात तो जरासा ध्यान देते ही हम दोनोंकी बुद्धिमें उजागर हो उठी थी।

श्रीमद्भागवतका आगेका श्लोक अब मैं पढ़ने लगा –

उरः स्थलं ज्योतिरनीकमस्य, ग्रीवा महर्वदनं वै जनोऽस्य ।
तपोरराटीं विदुरादि पुंसः सत्यंतु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः ।।

{भावार्थ}

उन सहस्रशीर्ष्ण आदिपुरुष परमात्माके उरस्थल {वक्ष}में स्वर्गलोक, ग्रीवामें महर्लोक, आननमें जनलोक, ललाटमें तपोलोक एवं उनके मस्तकमें सत्यलोक स्थित है ।

पू. गुरुदेवकी कृपासे मेरी प्रज्ञा खुल गयी थी और मुझे ठीक अनुभव हो रहा था कि सर्वत्र विश्वमूर्त्ति परमात्मा ही परमात्मा हैं । जैसे गगनस्थ सूर्य, चन्द्रादिकी प्रकाशमान सत्ता, समुद्रादिकी असंख्य लहरोंमें असंख्य प्रकाशमान प्रतिबिंब निर्माण कर देती है और वे सभी प्रतिबिम्ब सूर्य, चन्द्रादिवत् प्रकाशित होते हैं, इसी प्रकार मायाकी लहरियोंमें व्यक्त अनन्त लोक और इनके अन्तर्गत अनन्तानन्त जीव सृष्टि एक परमात्मामें ही विधृत है, उनकी सत्तासे ही सत्तान्वित हो रही है, उनकी ही चिच्छक्तिसे चैतन्य एवं जीवन्त है और उनके ही आनन्दसे आह्लादित है । श्रीमद्भागवत्कारका यह सब कहनेका एकमात्र उद्देश्य यही था कि मुमुक्षु परीक्षित अपने भीतर प्रवाहित परमात्माकी अपरिच्छिन्न अखण्ड नित्य सत्ताको न्यस्त समझ लें और अपनी अज्ञानमयी देहजनित मोहदृष्टिको त्याग दें और पूर्ण भयमुक्त हो जाय । एक तक्षक क्या, तक्षक जैसे अनन्त कीड़े और उनका विष इस महाविराट् सत्ताका बाल बाँका भी करनेमें समर्थ नहीं है । परन्तु यह परम निर्भय दृष्टि परीक्षितकी तभी संभव है जब वह अपनेमें विराट् परमात्माको सत्य–सत्य न्यस्त समझ ले।

आगेके श्लोक थे –

इन्द्रादयो बाहव आहुरुस्राः कर्णौ दिशः श्रोत्रममुष्यशब्दः ।
नासत्यदस्रौ परमस्य नासे घ्राणोऽस्य गन्धो मुखमग्निरिद्धः ।।

{भावार्थ}

भगवान्‌की भुजायें ही इन्द्रादि देवता हैं, उनके कान ही दिशायें हैं, उनके श्रोत्रोंके कारण ही अनन्त शब्द ध्वनियाँ अस्तित्व पा रही हैं । उनकी नासा ही सर्व गंधोंकी कारण है और घ्राणेन्द्रिय ही सर्वगन्धकी अनुभव कर्त्ता है । परमात्माके मुखसे ही धधकती अग्निकी सत्ता है ।

पू. गुरुदेव इतने मेधावी थे कि उन्हें श्रीमद्भागवत अधिकांशतः कण्ठस्थ थी । अतः वे श्रीमद्भागवतके भावानुसार सम्पूर्ण विराट् स्वरूपका न्यास कराते

जा रहे थे ।

मैं एवं श्रीमाधवशरणजी दोनों निस्संशय अनुभव कर रहे थे–भगवान्‌की भुजाओंका बल ही अधिदेवता इन्द्रको बलयुक्त कर रहा है और इन्द्रसे वही भगवान्‌का बल ही समग्र जीव समुदायका ओज बन रहा है । भगवान्‌की वाणीके शब्द ही वाणीकी अधिदेवी सरस्वतीकी सत्ता हैं और उस सत्तासे ही सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्डके जीव समुदाय अपनी वाणी द्वारा निज निज भावोंकी अभिव्यंजना कर रहे हैं । भगवान् विराट् पुरुषकी कर्णेन्द्रियाँ ही दिशाओंके अधिदेवता दिक् देवताओंके रूपमें शब्दोंको प्रतिध्वनित कर रहे हैं और जीव समुदाय इन शब्दोंको श्रवण करनेकी सामर्थ्य पा रहा है । भगवान्‌का मुख ही सम्पूर्ण धधकती अग्निका निवास है और उसी अग्नि देवताकी कृपासे जीव समुदायकी जठराग्नि पाचन क्रिया कर रही है । भगवान्‌के नेत्रोंसे ही दृष्टिके अधिदेवता सूर्य अस्तित्व पा रहे हैं और समग्र जीव समुदाय दृष्टा, दृष्टि एवं दृष्यकी त्रिपुटीमें भ्रमित हो रहा है ।

पू. गुरुदेव कहते जा रहे थे–"भगवान् विराट् पुरुषकी पलकोंके उन्मेष एवं निमेषसे ब्रह्माकी जाग्रति और सुषुप्ति हो रही है एवं विश्व सृष्टिमें, सृष्टि एवं प्रलयका क्रम चल रहा है, साथ ही अनन्त जीव समुदाय उत्पन्न होते हैं, काल गालमें स्थिति अनुभव करते हैं एवं मृत्यु {विनाश}को प्राप्त हो जाते हैं। भगवान् विराट्‌के भ्रूविलासमें ही ब्रह्मलोक, कैलाश एवं बैकुण्ठ लोक स्थित हैं । भगवान् विराट्‌के तालुसे जलकी सत्ता है और सम्पूर्ण जीव समुदायको जो स्वाद एवं रस आता है, उसकी मूल स्थिति भगवान्‌की जिह्वा है । यह सम्पूर्ण चित्र विचित्र लोक विलास करनेवाली जो माया–नटी है, वह भगवान्‌की मुसकानमें नित्य निवास करती है । भगवान्‌के कटाक्ष निक्षेपसे ही यह चौदहों भुवनोंकी अनन्तानन्त सृष्टि है ।

विश्वमें जितनी, जहाँ भी लज्जा है, उसका कारण भगवान् विराट् पुरुषका ऊपरी ओष्ठ है और लोभका कारण उनका अधर है । धर्म भगवान्‌के स्तनमें निवास करता है और अधर्मका कारण उनकी पीठ है । भगवान्‌की मूत्रेन्द्रिय ही प्रजापतिकी कारण है और ये ही प्रजापति समग्र विश्वसत्तामें सृजन रूपमें व्यक्त हो रहे हैं । भगवान् विराट्‌की कोख ही समुद्र है, जो सम्पूर्ण जीव समुदायकी उत्पत्तिमें हेतु है । भगवान्‌की अस्थियोंसे समग्र विशाल पर्वतोंका सृजन हुआ है ।

पू. गुरुदेव समझा रहे थे और हम दोनों {श्रीमाधवजी एवं मैं} उनके पार्श्वमें स्थित उनकी व्याख्यासे चमत्कृत विमुग्ध उनकी ओर टकटकी लगाये दत्तचित्त थे । हमारी उस विराट् पुरुषसे निश्चय ही एकता है, वह हमारा

मात्र कारण है, अतः हममें पूर्णतया एकमेक, अनुस्यूत है, यह तथ्य हमारी दृष्टिमें स्पष्ट था ।

पू. गुरुदेव कह रहे थे, नदियोंके रूपमें उस विराट्की नाड़ियाँ हैं, वृक्षोंके रूपमें उनके रोम हैं, परम प्रबल वायु उनकी श्वास है एवं काल उनकी चाल {गति} है । स्वप्न, सुषुप्ति एवं जागरण रूप चक्र चलाना ही उनका कर्म है, बादल उनके केश हैं, सन्ध्या एवं ऊषा उनके वस्त्र हैं । महात्माओंकी करुणामयी प्रकृति ही उनका हृदय है, चन्दमा उनका मन है, अखिल सृष्टिगत विज्ञान ही उनकी बुद्धि है, और भगवान रुद्र उनके अहंकार हैं । विशुद्ध सत्वजनित करुणाकी जो छाया जीव समुदायमें यत्किंचित कहीं भी दृष्टिगोचर हो रही है, वह सब उनके हृदयका क्षीणतम ही सही, जीव हृदयमें प्रकाश है । उन विराट्का निवास मनुष्यका चित्त है, गन्धर्व, विद्याधर, चारण और अप्सराएँ उनके सप्त स्वर हैं ।

पू. गुरुदेव हम लोगोंको सम्बोधित करते हुए कह रहे थे – "भैया ! यह विराट पुरुषके स्वरूपका न्यास है, इसी प्रकार जिस देवताकी भी पूजा की जाती है, पहले उसे अपने अंगोंमें न्यास किया जाता है, फिर ठीक उस देवतारूपमें अपनेको पूर्णतया विसर्जितकर देवता होकर ही देवार्चनका विधान है ।

मैंने प्रश्न किया – "बाबा ! फिर ध्यान एवं न्यासमें क्या अन्तर है ?

उन्होंने कहा – भैया ! ध्यानमें ध्याता रहता है, यह ध्येयसे अपनेको विलग अनुभव करता हुआ स्वयंको ध्यानकर्त्ता अनुभव करता रहता है । न्यासमें ध्याता ध्येयमें पूर्णतया न्यस्त हो जाता है । विराट् समुद्रमें जलकी बूँदका न्यस्त हो जाना समुद्र ही हो जाना होता है । न्यस्त साधक फिर कभी इष्टसे पृथक्ता अनुभव कर ही नहीं सकता । वह तो इष्ट हुआ ही इष्टमें पूजनरत रहता है । वह इष्टके समान वेष, रूप और आयुधों वाला इष्टका आवरण रूप ही होता है । न्यासका अर्थ ही है कि न्यस्त साधक ध्येयका आश्रयालम्बन हो जाय और ध्येय ही द्विधा हुआ उस आश्रयालंबनका विषय बना रहे ।

जैसे इष्टके स्वरूपका अपने स्वरूपमें न्यास होता है, उसी प्रकार इष्टके मंत्रका भी साधकके अंगोंमें, हृदयमें न्यास किया जाता है ।

तंत्र शास्त्रमें इष्ट, मंत्र एवं मंत्रद्रष्टा गुरु जो मंत्रमय होकर मंत्रदान करता है, तीनोंमें कोई भेद नहीं होता । वे तीनों एक ही होते हैं । जिसे मंत्रका ज्ञान होता है, उसमें मंत्र पूर्णतया न्यस्त है । जब मंत्र न्यस्त है तो गुरु मंत्रमय ही है । इष्ट तो पूर्णतया मंत्राधीन है ही । मंत्र एवं इष्ट भिन्न

होते ही नहीं । मंत्र ही इष्टका वाङ्मय स्वरूप ही है । जैसे ध्यान करते समय मन और इष्टका रूप एकत्व लाभ करता है, तभी ध्यान होता है अन्यथा ध्यान नहीं हो सकता, इसी प्रकार मंत्र जो इष्टका वाङ्मय स्वरूप है, वह साधकको मिलते ही इष्ट उसमें न्यस्त हो जाता है एवं जिसमें इष्ट न्यस्त है, वही गुरु है । जिसमें इष्ट न्यस्त नहीं है, वह तो मंत्र द्रष्टा भी नहीं है । इसीलिये मंत्र, मंत्रद्रष्टा एवं इष्ट एक रूप ही होते हैं । इसी प्रकार शिष्यको वरण करते ही शिष्य एवं गुरु भी एक ही हो जाते हैं, यह तंत्र शास्त्रकी अमोघ निष्ठा है । इसीलिये तंत्रशास्त्रमें प्रवेश गुरुके द्वारा ही सम्भव है ।

तंत्र शास्त्रमें मंत्रदीक्षाके पश्चात् मंत्रका साधक द्वारा पुरश्चरण किया जाता है । पुरश्चरणका अर्थ है कि उस मंत्रको लाखों बार देहमें न्यास किया जाय । जप विधान पूर्ण करते समय शिष्य लाखों बार ही अनुभव करे कि मेरे रोम–रोममें मंत्र न्यस्त है । इस प्रकार साधकका मंत्रमय हो जाना ही सही पुरश्चरण है । यही दीक्षा रहस्य है । जैसे ही दीक्षा दी जाती है, दीक्षा देते ही साधकका अहंकार संचित एवं प्रारब्ध कर्मराशि सहित नष्ट हो जाता है और वह मंत्रमय इष्टस्वरूप ही हो जाता है।

पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाको सचमुच ही हम लोग जीवनकालमें नहीं पहचान पाये । वे पूर्णतया मंत्रमय थे । उनका रोम–रोम अपने इष्टमें पूर्णतया न्यस्त था । वे साक्षात् शिव स्वरूप थे, पराशक्ति स्वरूप थे और परम शिव एवं पराशक्तिके सामरस्यका परमाधार थे ।

एक बार मैंने श्रीमाधवजीके साथ ही उनसे प्रश्न पूछा था – बाबा ! आपका शरीर क्या है ? पू. गुरुदेव उस दिवस अनुग्रह भावसे भरे थे । मुझसे कहने लगे – "भैया ! सच्ची बात तो यह है कि अधिकांश काल तो मुझे इस शरीरका भाव ही नहीं रहता । मैं जिस भावजगतमें खोया रहता हूँ, उस भाव जगतका इस सृष्ट विश्वतंत्रकी न तो स्थूल अवस्थासे कोई सम्बन्ध है, न ही इसकी कोई सूक्ष्म अथवा कारणावस्थासे । उस मेरे भाव शरीरके संबंधमें यदि तेरी यह जिज्ञासा है तो उसका प्रकाश तो वाणी कर ही नहीं सकती ।

हाँ ! यदि तेरा इस सृष्टि तंत्रमें जन्मे मेरे इस शरीरको लेकर प्रश्न है, तो जो सत्य बात मैं वाणीके द्वारा कह पाऊँगा वह भी तू अभी तेरी वर्त्तमान बुद्धिसे समझ नहीं सकेगा । यहाँ, इस बगीचेमें अभी तो कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है, {श्रीपोद्दार महाराजको छोड़कर} जो इस सत्यकी अवधारणा कर पावे।

मैंने पुनः कहा – बाबा ! आप मेरे कानोंमें बीजाक्षर तो डाल ही दीजिये। आज नहीं, कल जब कभी आपकी कृपा प्रतिफलित होगी और प्रज्ञाका विकास होगा, तभी सही, उस समय ये बीज पल्लवित होकर अपना

स्वरूप दिग्दर्शन तो करावेंगे ही ।

उस दिन पू. गुरुदेवने जो विलक्षण परम गूढ़ आगम शास्त्रीय शारीरिक विवेचन किया था, वह वास्तवमें ही विलक्षण था । इस सभी वक्तव्यको उस दिन मैं एवं माधवजी सुनकर चकित हो गये थे । सचमुच ही उस दिन तो हम दोनोंके ही, जो समझदारीका अभिमान लिये बेठे थे, कुछ भी पल्ले नहीं पड़ा था । मैं श्रीमाधवजीकी ओर देख रहा था और वे मेरी ओर, परन्तु दोनों ही अपनी अपनी अल्पज्ञतासे चूर्ण–अभिमान थे ।

पू. गुरुदेवने वह सब वक्तव्य तीन–चार स्लेट पट्टियोंमें लिखा था । हम पू. गुरुदेवसे उनके वक्तव्यका अर्थ समझें, इसके पूर्व ही पू. गुरुदेवको भिक्षा का बुलावा आ गया । वे लिखी पट्टियाँ पू. गुरुदेवकी कुटियामें ज्यों–की–त्यों रख दी गयीं । जब पू. गुरुदेव भिक्षार्थ पू. पोद्दार महाराजके निवासकी ओर चले गये, उस समय मैंने वह वक्तव्य अपनी कापीमें उतार लिया था । आज मैं पैंसठ–सत्तर वर्षका वृद्ध संन्यासी हूँ । उन दिनों २०–२५ वर्षका युवक था । आज भी प्रज्ञा इतनी समर्थ नहीं है कि पू. गुरुदेव के वक्तव्यका साक्षात्कार कर सकूँ । भले ही शब्दोंका अर्थ लगा लूँ ।

जिन दिनों पू. गुरुदेवने यह वक्तव्य दिया था, उस दिवस तो इनका शब्दार्थ भी न मेरी समझमें आया था न ही हिन्दीके सुविज्ञ लेखक श्रीमाधवशरणजीके।

पू. गुरुदेवका वक्तव्य था – भैया ! जब यह पराशक्ति आत्मगर्भस्थ एवं अपने साथ एकीभूत विश्वको देखनेके लिये उन्मुख होती है, तब मात्रावच्छिन्न शक्ति और शिव साम्य भावापन्न होकर एक बिन्दु रूपमें परिणत होते हैं । इसीसे पारमार्थिक चैतन्य प्रतिफलित होता है । यह पारमार्थिक चैतन्य ज्योतिर्लिंगके रूपमें प्रकटित होता है । इस पारमार्थिक चैतन्यको ही शैव ज्योतिर्लिंग कहते हैं और शाक्त कामरूप पीठ । यही मेरा कारण है । इस कामरूप पीठमें अभिव्यक्त चैतन्य ही स्वयं भू ज्योतिर्लिंग है । इसमें एक मात्रा शक्तिअंश एवं एक मात्रा शिवांशकी समभावमें संघटना है । शक्ति एवं शिवके इस अंश द्वयको आगम आचार्य शान्ता शक्ति एवं अम्बिका शक्तिके नाम एवं रूपमें वर्णन करते हैं । ये पराम्बा हैं ।

इस कामरूप पीठमें महाशक्तिका आत्मप्रकाश परावाक् रूपमें प्रख्यात है । जिन्होंने तन्त्रानुमोदित योगसाधनाका यथाविधि अभ्यास किया है, वे मानते हैं कि यहींसे शब्द राज्यकी सूचना होती है । यंही प्रणवका परम रूप अथवा वेदका स्वरूप है ।

यह मेरी कारणावस्थाका संक्षिप्त परिचय है । वैसे सही अवस्थाका

आकलन तो मात्र समाधिकी उच्च अवस्थामें आगम महर्षियोंकी संविद्भूमि ही कर पायी है, परन्तु शास्त्रोंमें जो वर्णन है और जिसका मेरी अनुभूतिसे साम्य है, मैंने वर्णन कर दिया है ।

पू. गुरुदेव कहने लगे – "मेरी कारण भूमिमें अर्थात् कामरूप पीठमें पराशक्ति आत्मगर्भस्थ विश्वको नित्य वर्त्तमान रूपमें देखती है । यहाँ अतीत एवं अनागत रूप खण्डकालकी सत्ता नहीं है । यहाँ दूर और निकटका व्यवधान भी नहीं है । कौन कार्य है और कौन कारण है, यह सब यहाँ अपरिज्ञात है। इस मेरे नित्य कारण मण्डलमें किसी प्रकारका आवरण नहीं है । सब निरावरित स्वच्छ दर्पण है । यहाँ किसी भी प्रकारका क्षोभ एवं चंचलता दिखती ही नहीं। पूर्ण परम शान्त यह अवस्था है । यही मेरी निद्रा है ।

इसके पश्चात् इच्छा शक्तिके उन्मेषके साथ शब्दके द्वितीय स्तरमें सृष्टिका विकास होता है । मेरे कारणमें किञ्चित् क्षोभ होता है । इस क्षोभको विकारमूलक परिणाम सर्वथा नहीं मानना चाहिये । यह मेरी स्वतन्त्र सत्तामें स्वाभाविक गति है । मेरा पूर्ण स्वातंत्र्य–विलास ही इसे मानना चाहिये। मेरे पूर्ण स्वतन्त्र–विलासका नर्त्तन अथवा गति भी इसे कहा जा सकता है । अब पूर्ण शान्ता शक्ति इच्छा रूपमें परिणत होती है । शिवांश सहित अम्बिका शक्ति अब वामा रूपमें आविर्भूत होती है । अब इच्छा शक्तिके उन्मेषके साथ शब्दके द्वितीय स्तरमें सृष्टिका विकास होता है । इसे आगम शास्त्र नित्य मण्डल कहता है । इन दोनों अम्बिका शक्ति एवं वामाशक्तियोंके पारस्परिक वैषम्यका परिहार होने पर जिस अद्वय सामरस्य बिन्दु का आविर्भाव होता है उससे तदनुरूप जो चैतन्यका स्फुरण होता है, इसे पूर्ण गिरिपीठ रूपमें शाक्त अभिधान करते हैं एवं शैव इस चिद्विकासको बाण लिंगके नामसे जानते हैं । यह मेरी कारण एवं सूक्ष्म शरीरके मध्यकी अवस्था है और शास्त्रदृष्टिसे यह पश्यन्ती वाक्की अवस्था है।

अभी विश्व गर्भस्थ बीजरूप है । अब इच्छाके प्रभावसे उस बीजकी गर्भके एक देशमें विसृष्टि होती है । तब उसे सृष्टि नाम प्राप्त होता है ।

इस भूमिसे ही कालका प्रभाव प्रारम्भ हो जाता है । कालका उदय होने से सृष्टि क्रियामें भी क्रम आ जाता है । देशका और कार्यकारण भावका स्फुरण भी यहींसे समझना चाहिये । यह मेरा सूक्ष्म शरीर है ।

मेरे सूक्ष्म शरीरकी परावस्थामें इच्छा शक्तिके उपराम होने पर ज्ञान शक्तिका उदय होता है । अब वामा शक्ति ज्येष्ठा शक्तिके रूपमें विकसित होती है । ज्येष्ठा शक्तिके साथ शिवांश अद्वैत भावमें मिलित हुआ जालन्धर

पीठ रूप सामरस्य बिन्दुकी सृष्टि करता है । इस बिन्दुसे अभिव्यक्त चैतन्य इतर लिंग नामसे अभिहित है । शक्तिके इस स्तरमें मध्यमा वाक् आविर्भूत होती है। इसे ही मेरा सूक्ष्म शरीर मानना चाहिये।

अब स्थिति स्थूल शक्ति हो जाती है । अपने स्वतन्त्र स्वभावके नियमसे ही अन्तर्मुखी आकर्षणकी प्रबलता होनेके कारण संहार शक्ति क्रियाशील हो उठती है । ज्ञानशक्ति क्रियाशक्तिके रूपमें परिणत हो जाती है । शिवांश रौद्री शक्तिके साथ साम्य भावको प्राप्त हो जाता है । अब इसके फलस्वरूप जिस अद्वैत बिन्दुका अविर्भाव होता है, उसे उड्डीयान पीठ कहते हैं । यह सामरस्य बिन्दुसे चित् शक्ति पर लिंग रूपमें अभिव्यक्त होती है। यह शब्दकी वैखरी नाम चतुर्थ भूमि है। जिस संहारशील क्षयवर्धक चक्रधर अथवा राधाबाबा अभिहित शरीरका जो तू अनुभव कर रहा है, यह इस वैखरी शब्दकी ही विभूति है ।

आज जब मैं तन्त्र साधना करते–करते तान्त्रिक शब्दावलियोंसे परिचित हो गया हूँ एवं पू. गुरुदेवकी कृपासे अनुभूतिकी परिपक्वतामें पदार्पण कर रहा हैं, तब सोचता हूँ कि पू. गुरुदेवने अपनेमें समग्र शक्ति तत्वको न्यास करके कैसा रहस्यमय विवेचन किया है । कामरूप पीठ एवं स्वयं भू लिंगका सामरस्य सृष्टिके पूर्वकी परावाक् अवस्था है । यही तो वाणी {सरस्वती}की उत्पत्तिके भी परेकी अवस्था है । यहाँ न ब्रह्मा हैं, न महा सरस्वती । सब सृष्टि शक्तिमें आत्मगर्भस्थ है ।

त्रिलोक, त्रिदेव, त्रिकाल, प्रभृति सभी परा एवं तुरीय वाक्के पश्चात्की ही अवस्थाएँ हैं । बिन्दु गर्भित जो महात्रिकोण समस्त ब्रह्माण्डके मूल रूपमें शास्त्रोंमें सर्वत्र व्याख्यात हुआ है, वह शब्दके इसी चतुर्विध सम्बन्धसे ही प्रकट होता है । इस त्रिकोण की तीन रेखायें पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी रूप, तीन प्रकारके शब्द सृष्टि, स्थिति एवं संहार रूप, तीन प्रकारके व्यापार, वामा, ज्येष्ठा और रौद्री तीन प्रकारकी शक्तियाँ, किंवा ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र तीन प्रकारके शिवांश अथवा इच्छा, ज्ञान एवं क्रियारूप तीन शक्त्यंशके ही प्रतीक हैं और यह पूर्ण शक्ति मेरे पू. गुरुदेव राधाबाबामें नित्य न्यस्त थी । इसीको संकेत करते हुए मेरे पूर्वाश्रमके मामाजी श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी ने मुझसे कहा था कि पूज्य गुरुदेव श्रीराधाबाबा न्यास विद्यामें असमोर्ध्व पण्डित हैं । पू. गुरुदेव कैसी परमोच्य गरिमामयी स्थितिमें नित्य प्रतिष्ठित थे, इसकी एक झाँकी भर आगम विद्वज्जनोंके सम्मुख रख रहा हूँ ।

शक्ति साधनाके सम्बन्धमें विविध प्रश्न एवं उनके पू. गुरुदेव द्वारा उत्तर

{पू. गुरुदेव श्री राधाबाबाके पास कभी–कभी श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, सम्पादक कल्याण–कल्पतरु, श्रीरामनारायणजी शास्त्री, सम्पादक मण्डलके वरिष्ठ सदस्य एवं संस्कृतके उद्भट विद्वान्, श्रीमाधवशरणजी श्रीवास्तव, कल्याण कल्पतरुके सम्पादक मण्डलके प्रमुख आदि विद्वान् लोग जब एकत्रित होते थे तो गूढ़ तान्त्रिक शब्दावलियों, दर्शनशास्त्रके गूढ़ विषयों पर प्रश्न किया करते थे, उस समय जो उत्तर पू. गुरुदेव द्वारा दिये जाते थे, उन्हें यथाश्रुत–यथागृहीत यहाँ लिखा जा रहा है । यह पूर्वतः भी अनेक बार उल्लिखित हो चुका है कि पू. गुरुदेव मौन रहते थे, वे मात्र "राधा""राधा" ये दो शब्द ही बोलते थे । वे जो भी उत्तर देते थे उसे स्लेट पट्टियोंमें लिख दिया करते थे, जिसे पढ़कर ही उनका वक्तव्य ज्ञात होता था।

{त्रिकोण एवं महाकारण बिन्धु} {त्रिकोण का भाव}

प्रश्न – बाबा ! तंत्र शास्त्रोंके यंत्रोंमें सर्वत्र त्रिकोण देखनेको मिलता है। इस त्रिकोणके मध्यमें बिन्दु रहता है । अतः इस त्रिकोण एवं बिन्दुसे शास्त्र किस गूढ़ पारमार्थिक रहस्यका संकेत दे रहे हैं, कृपया इस पर प्रकाश डालें ।

पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाका उत्तर – "देखिये ! यह जीव अपने इन्द्रिय द्वारोंके ज्ञानसे ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्धात्मक जगत्का अनुभव कर रहा है । कोई भी जीव जब शयन करता है तो निद्राके पूर्व उसे इन्द्रियोंका प्रत्याहार करना ही पड़ता है । शान्त होकर नेत्र मूँदने पड़ते हैं, श्रवणेन्द्रियोंको भी शब्द निक्षेपसे निवृत्त करना पड़ता है । इस प्रकार प्रत्याहार करने पर इन्द्रियोंकी उपशान्त अवस्था होते ही यह पंचभूतात्मक जगत् निद्रामें विलीन हो जाता है । यह प्रत्याहार निद्रित होनेके पूर्व एक मच्छर भी करता है, अतः यह क्रिया सभीके द्वारा स्वतः प्रतिफलित होती है । यह सिद्ध कर रहा है कि बाहय जगत् इन्द्रियोंका ही बहिर्विलास मात्र है । चक्षु इन्द्रिय ही रूपका विकास करती है और चक्षु ही रूपका दर्शन करती है । चक्षु इन्द्रियका

बहिर्विलास यदि रोक दिया जाय तो रूप लुप्त हो जाता है । क्योंकि रूप सर्वव्यापी है, अतः यही समझमें आता है कि समष्टि चक्षु समग्र रूपका विकासकर्त्ता है और व्यष्टि चक्षु भोक्ता है । इसी प्रकार अन्यान्य इन्द्रियोंके सम्बन्धमें भी विचार किया जाय तो यही तथ्य उजागर होता है कि समष्टि भावापन्न पंचेन्द्रियाँ उसका भोग कर रही हैं ।

अब यदि हम अपनी इन्द्रियोंका समाहार कर लें और उन्हें केन्द्रीभूत किसी मूल सत्तामें लीन कर लें तो उस समय यह स्थूल जगत तो दिखना एवं अनुभव होना स्थगित हो ही जाता है साथ ही इन्द्रियोंका अभाव हो जानेसे उनकी स्थूल सम्भोग सम्भावना भी समाप्त हो जाती है । परन्तु क्योंकि अभी भी चित् क्षेत्रोंमें ज्ञानका संचार है, अतः बहिःकारणोंका अभाव होकर अन्तःकरणका आविर्भाव हो जाता है । इस अन्तःकरणका भी क्योंकि समष्टि जीव समुदाय अनुभव करता है, अतः यही अनुभव होता है कि समष्टि अन्तःकरणका अभिमानी तत्व तो इसका द्रष्टा है और व्यक्ति इस अन्तःकरणका ज्ञाता है । यह अन्तःकरण ही अन्तर्जगतको स्फुरित करता है और जीव स्वप्न जगत या आतिवाहिक सूक्ष्म जगतमें प्रविष्ट होता है ।

अब बाह्य इन्द्रियोंकी भाँति अन्तःकरण भी निरुद्धवृत्तिक अवस्थाको जब प्राप्त होने लगता है तो अन्तर्जगत या आतिवाहिक सूक्ष्म जगत भी लुप्त हो जाता है । इस समय आतिवाहिक जगत का भोक्ता भी घोर अज्ञानमें, चाहे निद्रामें कहो, डूब जाता है । इस समय भोक्ताके न रहने पर जीव शुद्ध कारण भूमिमें स्थान पाता है । इस समय समष्टि कारण बिन्दुका स्फुरणात्मक कारण घोर अज्ञान ही दृष्य होता है और व्यष्टि कारण बिन्दु तदात्मक भावमें उसका दर्शन करता है । अब सौभाग्यवश यदि कोई भाग्यवान् जीव इस मूल ग्रन्थिको भी भेद कर पाता है तो वह मूल अविद्याके विलास स्वरूप इस मिथ्या प्रपञ्चके पाश जालसे सदा–सदाके लिये निवृत्त हो जाता है, छुटकारा पा जाता है ।

उपर्युक्त विचार से यह प्रतीत होता है कि स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण जगत तदनुरूप शक्तिके ही विकास मात्र हैं । शक्तिके तीन विभागों अर्थात् कारण जगतका प्रकाशक आधार आत्मा, सूक्ष्म जगत्के आधार, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाशके अधिष्ठातृ देवता और स्थूल जगत्के आधार पंच स्थूल भूत – शक्तिकी तीन प्रकारकी अवस्थितिका अनुसरण करते हुए उसके परिणाम स्वरूप कारण, सूक्ष्म और स्थूल–इन त्रिविध रूपोंमें प्रकट हो रहे हैं। इससे ठीक अनुभव होता है कि शक्तिके बहिर्मुख होकर घनीभूत अथवा स्थूलत्वको प्राप्त करने पर एक ओर जहाँ भौतिक तत्वोंका अविर्भाव होता है दूसरी ओर शक्तिके इसी प्रकार क्रमशः विरल होते–होते अन्तःसंकोच अवस्थाको प्राप्त होनेसे वही शक्ति आत्मा

अथवा बिन्दु वाच्य हो जाती है ।

अतएव यही स्पष्ट परिलक्षित होता है कि तथाकथित आत्मा, देवता {आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी} और स्थूल भूत प्राणि–पदार्थ, धन, जन, महल, मकान, खेत, खलिहान, कीट, पशु,–पक्षी, मानव एक ही आद्या शक्तिकी त्रिविध अवस्थाएँ हैं । स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण यह त्रिविध जगत एक ही मूल सत्ताके तीन प्रकारके परिणामके सिवा और कुछ नहीं है । यह स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण जगत ही इस त्रिकोणके रूपमें आगम शास्त्रोंमें वर्णित है और मूल आद्यासत्ता ही यह बिन्दु है ।

अब इसे और दूसरी तरह समझ लें । स्थूल जगत जिसे हम निरन्तर मृत्युपर्यन्त अनुभव करते हैं, बिन्दु {बोध प्रकाश} का बाह्य प्रसारण अथवा विकिरण मात्र है । इन्द्रियोंके प्रत्याहारसे इस रश्मि मालाको उपसंहृत कर सकने पर बाह्य जगत स्वभावतः बाह्य बिन्दुमें विलीन हो जाता है । इसी प्रकार लिंगात्मक अथवा आभ्यन्तरिक आतिवाहिक जगत् भी जो विक्षुब्ध अन्तःकरणका बाह्य विलास मात्र है, वह भी विलीन होने पर तदनुरूप बिन्दु स्वरूपमें अव्यक्त हो जाता है । इसी प्रकार कारण जगत् भी उपसंहारको प्राप्त होकर कारण बिन्दु में पर्यवसित हो जाता है । ये तीनों जगत ही जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाके द्योतक हैं । अतएव स्थूल सूक्ष्म एवं कारण–ये तीनों बिन्दु ही त्रिकोणके तीनों प्रान्तोंके बिन्दु हैं । इन्हें "अ" कार कारणात्मक, "उ"कार सूक्ष्मात्मक एवं "म" स्थूलात्मकके नामसे भी सांकेतिक भाषामें अभिहित किया जा सकता है । अन्तर्मुखी होनेकी प्रेरणासे जब ये तीनों बिन्दु रेखा रूपमें भीतरकी ओर संकुचित होते हुए जब महाबिन्दुमें पर्यवसित होते हैं, वही तुरीय रूपमें तुरीयबिन्दु महा कारण रूपमें अभिहित होता है । त्रिकोण रचना करके इसे और स्पष्ट समझ लें ।

सूक्ष्मात्मक बिन्दु "उ" कार "म" कार स्थूलात्मक बिन्दु

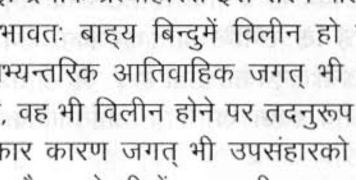

"अ" कार

{ कारणात्मक बिन्दु }

दूसरा प्रश्न : बाबा ! आपने त्रिकोणके तीनों बिन्दुओंको स्थूल जगत रूप बिन्दु जो बहिरिन्द्रियोंसे अनुभव में आ रहा है, सूक्ष्म जगत रूप बिन्दु जो स्वप्नमें दिखता है तथा कारण बिन्दु जो निद्रा एवं सुषुप्तिमें घोर

अज्ञानके रूपमें व्यक्त होता है, स्पष्टतया समझा दिया । अब यह महाकारण रूप मध्य बिन्दु भी तनिक और खोलकर स्पष्ट समझा दें।

पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा द्वारा उत्तर – "सृष्टिके आदिमें अनादिकालसे जो अव्यक्त, पूर्ण निराकार शून्य स्वरूप वस्तु विराजमान है, वह तत्वातीत, प्रपंचातीत तथा व्यवहार पथके भी अतीत है । वही शाक्तोंकी महाशक्ति, शैवोंकी परम शिव है । वाणी एवं मनके अगोचर होनेके कारण उसे निर्गुण निराकार निर्विशेष कहते हैं । परन्तु अप्राकृत गुणोंसे युक्त होनेके कारण वह सगुण सविशेष भी है । अप्राकृत आकार होनेके कारण वे साकार भी हैं। वस्तुतः उनका वर्णन तो न कोई कर सका है, न आगे कोई कर सके, ऐसी संभावना ही है । इसे विशुद्ध प्रकाश–निर्गुण निराकार निर्विशेष ब्रह्म कहें तो भी कहना नहीं बनता क्योंकि अन्तर्लीन विमर्शके कारण यह तत्व अप्रकाशमान है । निद्रा अप्रकाशमान इसीलिये है कि उसमें विमर्श अन्तर्लीन है । उसकी विमर्श शक्ति ही स्वप्न एवं जागरणका खेल कर रही है । इसे विशुद्ध विमर्श भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसमें स्वयं प्रकाशतत्व भाव भी है । प्रकाशहीन विमर्श तो सर्वथा ही असत्–कल्प है । इस तत्वातीत और अनुत्तर अवस्थाको आगम शास्त्र "अ" कार प्रयोग करके वाच्य करता है। इसके उत्तर–परे कुछ भी नहीं इसलिये वह "अ" है । "अ" कार रूप प्रकाशके साथ "ह" कार रूप विमर्शका सामरस्य ही शिव शक्तिका साम्य है । "अ" शिव है और "ह" शक्ति है । बिन्दु रूपमें यही "अहं" ही, अर्थात् पूर्ण अहंता ही शिव शक्तिका सामरस्य है । इस पूर्ण अहंता रूप बिन्दुको न तो ब्रह्म कहा जा सकता है, न ही ईश्वर, एवं न ही देवी–देवता, ऋषि, मुनि, जीव। यहाँ विराट् एवं अल्प, लघु एवं महान्, ईश्वर एवं जीवका भेद ही तिरोहित रहता है । एक सूक्ष्मतम कीट–भृंग भी जहाँ अपनेको "अहं" ही मानता है। इस अहंकी भूमिमें जीव–ईश्वर, ज्ञानी–अज्ञानी, विराट्–अल्प सभी भेद तिरोहित हैं । यहाँ दृष्टि एवं सृष्टि भी एकार्थ बोधक व्यापार हो जाते हैं। अहंकी भूमि सब कुछ मात्र "अहं" ही "अहं" है ।

जो शक्ति एवं सत्ता पंच भूतोंकी स्थूल भूमिके रूपमें आत्म प्रकाश किये हैं, उसका साम्य प्रथम साम्य है, उसी प्रकार सूक्ष्म एवं कारण जगत के रूपमें सम्पर्क करने वाली शक्ति और सत्ताका साम्य क्रमशः द्वितीय एवं तृतीय यह त्रिविध साम्य पारस्परिक भेदका परिहार कर जिस महासाम्यमें एकत्व लाभ करता है, वही परमाद्वैत या ब्रह्म तत्व है । यह परम पद ही वह बिन्दु है जहाँ त्रिविध साम्यके पश्चात् परमाद्वैत अथवा महा साम्यका आविर्भाव होता है । महाशक्तिके उद्बोधनके बिना इस परमाद्वैत परम पद पर प्रवेशाधिकार पाना

असंभव ही है ।

{विमर्शकी व्याख्या}

तीसरा प्रश्न – आपने अपने वक्तव्यमें "विमर्श" शब्द का उल्लेख किया है । विमर्श किसे कहते हैं ? इस पर तनिक विस्तारसे प्रकाश डालें।

पू. गुरुदेवका उत्तर – शक्ति सद्रूपा, चिद्रूपा एवं आह्लाद रूपा है। सच्चिदानन्द परमात्मामें सत्, ज्ञान एवं आनन्दका स्फुरण यह विमर्श शक्ति ही कराती है । एक सुन्दर कथा मेरे सुननेमें आयी है । एक भिखारी यावज्जीवन एक शहरमें एक स्थानमें रहा । उस स्थानकी भूमिके ठीक पाँच फुट नीचे अकूत सम्पत्ति गड़ी हुई थी । हीरे, जवाहरात और अनमोल रत्न स्वर्ण पात्रोंमें भरे थे। वह भिखारी उस अनन्त अनमोल सम्पत्तिका एक मात्र स्वामी था क्योंकि उसकी झौंपड़ी पीढ़ियोंसे उसके पिता–पितामह, प्रपितामहके पास रही थी और वे सभी उस पर घासकी झौंपड़ी बनाकर यावज्जीवन भीख माँगकर पेट भरते रहे थे । अकूत सम्पत्ति पर स्वामित्व रखता हुआ भी परम्परासे यह परिवार भीखसे दोनों जून भर पेट भोजन भी नहीं जुटा पाता था और सायंकाल तो प्रायः भूखे पेट ही पानी पीकर उन्हें सोना पड़ता था । अब जैसे उस धन सम्पत्तिके विषयमें बोध नहीं रहनेसे वस्तुतः धनी होने पर भी व्यवहार भूमिमें उस भिखारी की तीन पीढ़ी निर्धनवत् रही, उसी प्रकार आत्म प्रकाश स्वरूप होने पर भी उस प्रकाशकी प्रकाश मानताका बोध न रहे तो वह अप्रकाश ही माना जायेगा । इसीसे कहा जाता है कि शिवसे यदि "इ" कारात्मक शक्ति हट जाय तो शिव मात्र "शव" हो जाता है । व्रजमें एक रसिया गाया जाता है –"जो "राधा" नाम न होतौ तो, कृष्ण बिचारे रोतो"। यह विमर्श शक्ति ही परावाक् स्वरूपिणी है । यही ब्रह्ममें अपने आपका "अहं" रूपमें बोध कराती है । "अहं ब्रह्मास्मि" पद् – "अहं" सत्तात्मक, "ब्रह्म" चिदात्मक और अस्मि आनन्दात्मक बोध युक्त है । यह बोध विमर्शात्मक है । यदि यह न हो तो सत् स्वरूप ब्रह्म असत्, चिदात्मक ब्रह्म अचित् और आनन्दात्मक ब्रह्म आनन्द शून्य ही रह जाता है। इस विमर्शके बिना प्रकाश भी प्रकाशमानताके अभावमें अप्रकाशवत् ही प्रतीत होगा । इसीलिये चिद्रूप विमर्श शक्ति मानना ही पड़ता है ।

{अप्राकृत देह, आकार, गुण एवं स्वभाव}

चौथा प्रश्न – बाबा, आपने अप्राकृत गुण एवं अप्राकृत आकारकी बात तत्वातीत वस्तुका उल्लेख करते समय कही है । तत्वातीत वस्तु अप्राकृत देह एवं उसके स्वभावको कैसे ग्रहण करती है, इसे तनिक

विस्तारसे समझाइये ।

पू. गुरुदेवका उत्तर – जीव समुदायके जन्मोंकी अनेक श्रेणियाँ हैं । पिता–मातासे जन्म लेने वाले प्रकृति राज्यके सम्पूर्ण देह प्राकृत हैं । प्राकृत देहोंका निर्माण स्थूल, सूक्ष्म और कारण–इन तीन भेदोंसे होता है । जब तक "कारण" देह रहता है तब तक प्राकृत देहसे मुक्ति नहीं मिलती । इस त्रिविध देह समन्वित प्राकृत देहसे छूटकर–प्रकृतिसे विमुक्त होकर केवल आत्मरूपमें ही स्थित होने या चिन्मय पार्षदादि दिव्य स्वरूपकी प्राप्ति होनेका नाम ही मुक्ति है। मैथुनी, अमैथुनी, योनिज–अयोनिज सभी प्राकृत शरीर वस्तुतः योनि एवं बिन्दुके संयोगसे ही बनते हैं । इनमें अनेक स्तर हैं । अधोगामी बिन्दुसे उत्पन्न शरीर जहाँ अधम हैं, वहाँ ऊर्ध्वगामी बिन्दुसे निर्मित उत्तम । कामप्रेरित मैथुनसे उत्पन्न शरीर सबसे निकृष्ट है । किसी प्रसंग विशेष पर ऊर्ध्वरेता पुरुषके संकल्पसे बिन्दुके अधोगामी होने पर उससे उत्पन्न होने वाला शरीर सबसे उत्तम द्वितीय श्रेणीका है । ऊर्ध्वरेता पुरुषके संकल्प मात्रसे केवल नारी–शरीरके मस्तक, कण्ठ, कर्ण, हृदय या नाभि आदिके स्पर्श मात्रसे उत्पन्न शरीर द्वितीय की अपेक्षा भी उत्तम तृतीय श्रेणी है । इसमें भी नीचेके अंगोंकी अपेक्षा ऊपरके अंगोंके स्पर्शसे उत्पन्न शरीर अपेक्षाकृत उत्तम हैं । बिना स्पर्शके केवल दृष्टि द्वारा उत्पन्न शरीर उससे भी उत्तम चतुर्थ श्रेणीके हैं । बिना ही देखे संकल्प मात्रसे उत्पन्न शरीर उससे भी श्रेष्ठ पंचम श्रेणीके हैं । त्रेतादि लोकोंमें वायु प्रधान एवं देवलोकादिमें तेजः प्रधान तत्तत्–लोकानुरूप देहभी प्राकृत एवं भौतिक ही है । योगियोंके सिद्धि जनित "निर्माण शरीर" बहुत शुद्ध हैं, परन्तु वे भी प्रकृतिसे अतीत नहीं हैं ।

आध्यात्मिक जगतमें प्रवेश करनेके लिये एक आध्यात्मिक देहका निर्माण आवश्यक होता है । इसको दिव्य देह, ज्ञान देह आदि का नाम दिया जाता है। खीष्टीय कैथोलिक सम्प्रदायमें इसे SPIRITUAL BODY कहा जाता है । भारतीय तन्त्र इसे "बैन्दव देह" कहता है । इस देह की उत्पत्ति आध्यात्मिक सिद्ध गुरु अथवा इष्ट देवता या देवीसे होती है । दीक्षा प्राप्तिके साथ ही देह बीजकी प्राप्ति होती है और यह बीज क्रमशः देह रूपेण परिणत होता है । उच्च कोटिके साधकोंमें यह विकास प्राप्त देह रूप में ही उपलब्ध होता है, केवल बीज मात्र रूपमें नहीं ।

वैदिक युगमें उपनयनके अनन्तर गायत्री मंत्र दीक्षाके साथ ही इस देहकी प्राप्ति रूप द्वितीय जन्म होता था । इसीलिये जातकको द्विज कहा जाता था । इस देहका क्रम विकास भी होता है और पूर्ण विकास आध्यात्मिक सिद्धिके रूपमें ही प्रकट होता है । स्वरूपका यह आत्यात्मिक परिवर्तन गुरु

शक्तिसे होता है । यह द्वितीय जन्म Regeneration के नामसे प्रसिद्ध है और इसमें प्रकृतिका अंश जितना–जितना शोधित होता जाता है वह "रिजेनेरेटड" माना जाता है और जो शोधनमें शेष रह जाता है वह Un - regenerated "अनरिजेनेरेटेड" कहा जाता है । जिस क्षणमें पहली बार पूर्णतामें दिव्य प्रकाश होता है, वही सिद्धावस्था है ।

वास्तवमें काल प्रवहके दो क्रम हैं – आरोहण और अवरोहण । जिस क्रमसे चलने पर संकुचन क्रमशः छूटता जाता है, वह आरोहिणी धारा है और जिस क्रमसे चलने पर संकुचनकी क्रमशः वृद्धि होती है वह अवरोहिणी धारा है। अवरोहकी स्थितिमें बन्धन क्रमशः उत्तरोत्तर प्रगाढ़ होता जाता है और आरोहमें क्रमशः क्षीण–क्षीणतर–क्षीणतम होता हुआ जीव बन्धनमुक्त हो जाता है ।

इसी प्रकार आरोह क्रममें जीव काल राज्यका अतिक्रमण करता है । समग्र विश्व जो परिणामका अनुभव कर रहा है, कालके आधीन है । कोटि–कोटि ब्रह्माण्ड, स्वर्गसे लेकर पाताल तक चतुर्दश भुवनोंमें रहने वाले जीव सभी कालान्तर्गत है । ब्रह्माण्डोंसे अतीत प्रकृति अण्ड एवं मायाण्ड भी हैं । यह सब सृष्टि कालान्तर्गत है । मायासे अतीत शाक्ताण्डमें भी काल है, परन्तु वहाँ काल महाकालके रूपमें है । इन शाक्ताण्डोंमें मायिक राज्योंकी भांति क्षणिक परिणाम नहीं होते । इस कालराज्यके बाहर ले जाना ही सद्गुरुका लक्ष्य है । अतः सद्गुरु प्रदत्त ज्ञानदेह कालके प्रभावसे मुक्त होती है ।

दीक्षाके पश्चात् सद्गुरु शिष्यके अन्तरमें प्रविष्ट होकर अन्तर्यामी रूपसे शब्द ब्रह्ममय ज्ञानदेहका बीज डालते हैं । ज्ञानदेहका आकार ज्ञानात्मक है और इस देहमें ज्ञानका स्फुरण निरन्तर होता रहता है । यहाँ ज्ञान शब्दसे सामान्य ज्ञान समझना चाहिये । जब विशेष ज्ञानकी अपेक्षा होती है, उसका नाम होता है विज्ञान, ज्ञान होने पर विज्ञान नहीं भी हो सकता है । ज्ञान स्वरूपमें क्रिया नहीं होती । क्रियामें ज्ञान नहीं होता परन्तु विज्ञानमें क्रिया और ज्ञान दोनोंसे सम्बन्ध रहता है । गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञानदेह शब्दज होती है । यह शिष्यके हृदयमें परोक्ष रूपसे उद्भूत होती है । यह ज्ञानदेह पर्यवसित हो जाती है, विवेकज अनुभूतिमें जो शब्दाश्रित नहीं होती । यह अनुभूति शिष्यके विवेकसे अपने आप उद्भूत होती है । प्रातिभ ज्ञान इसका नामान्तर है । यह अनुभूति अनौपदेशिक है । यही प्रत्यक्ष ज्ञान है । सद्गुरुकी विशिष्ट कृपा होने पर ही यह आविर्भूत होता है । इसे ही तारक ज्ञान कहते हैं । गुरुके मौखिक उपदेशसे इस प्रकारका प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न नहीं होता । इस महाज्ञानका संचार गुरु अलक्षित रूपसे करते हैं। इससे

हृदयके मर्ममें प्रविष्ट सभी ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं ।

"गुरोऽस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यस्तु छिन्न संशयः ।।"

पू. गुरुदेव कहते जा रहे थे, सद्गुरुकी महाकरुणाके बिना प्रत्यक्ष आत्मप्रकाश असंभव है । यह गुरु–करुणा ही शान्ति एवं चैतन्यकी ज्योति साधकके जीवनमें प्रस्फुटित करती है । तभी अपरोक्ष ज्ञान संभव है । उस समय ज्ञानमें कहीं संशय अथवा विकल्पके लिये अवकाश नहीं रहता । यह शब्दातीत ब्रह्म पर प्रतिष्ठा होती है । जो सर्वदा, सर्वत्र समभावसे विद्यमान है, यह उसीका साक्षात्कार है । "चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः" की उक्तिमें यही सत्य उजागर है । यह अवस्था भी पूर्ण आत्मदर्शनकी नहीं है। इस अवस्थामें स्थित होना भी आत्मरूपमें स्थित होना नहीं है ।

इसके पश्चात् साधकके जीवनमें प्रेमकी प्रक्रियाका प्रारम्भ होता है । वास्तविक रस–साधनाका सूत्रपात ही ज्ञानोत्तर है । किन्तु केवल प्रत्यक्ष ज्ञानके उदय हो जानेसे ही भावका उदय नहीं होता । भावोदयके लिये पूर्ण काम दहनकी आवश्यकता अनिवार्य होती है । मदनका सम्पूर्ण दहन भगवान् शिवके तृतीय नेत्र अथवा ज्ञान चक्षुसे निःसृत अग्निसे होता है । इसका तात्पर्य यही है कि अज्ञानका बीज तक भस्म हो जाय । बीज रूप अज्ञान रहने तक तो कामदेवका अस्तित्व रहता ही है । अज्ञान ही तो पशुभाव है । दिव्य ज्ञानसे पशुभाव पूर्ण निवृत्त होकर पशुपति या शिवभाव होता है । इसके अभिव्यक्त होने पर कामका समग्र नाश होता है । यह शिवरूप सत्ता भी ज्ञानातीत परिपूर्णत्व तभी लाभ करती है जब प्रेम भावकी पराकाष्ठा लाभ करके प्राकृत कामके आकर्षणसे अतीत हुई, परम भावको प्राप्त करती है । यह परम भाव ही राधा महाभाव है । ये भगवती राधा और भगवान् श्रीकृष्ण दो नहीं है । एक ही "कन्दर्पदर्पहा" तत्वके द्विधा स्वरूप है। इसीलिये श्रीकृष्णका बीज मन्त्र काम बीज है । इनके सम्मुख काम तिरोहितवत् हो जाता है, वह इनका प्रमुख उपासक हो जाता है । प्राकृत कामका सब वैभव इनके सम्मुख तुच्छीकृत हुआ नगण्य म्लान हो जाता है और म्लान होते–होते लुप्त हो जाता है । प्राकृत काम महाज्ञानके नीचे है और ये दिव्य काम मन्मथ–मन्मथ श्रीकृष्ण तथा मन्मथ–मन्मथ–मानस–मन्थिनि श्रीराधा महाज्ञान से अतीत है । महा ज्ञान वह है जिसमें प्राकृत–अप्राकृत अध–ऊर्ध्व, प्रभृति भेद मिट जाते हैं और समग्र विश्व कालातीत अखण्ड अद्वय रूपमें भान होता है और महाभाव एवं महारसराजका तो कोई वर्णन ही नहीं कर सकता, वहाँ अप्राकृत जगतका प्रारम्भ होता है ।

श्रीराधाकृष्ण तत्व सर्वथा अप्राकृत है, इनका विग्रह, नेत्र–मुखादि इन्द्रियाँ,

इनके अंग–अवयव, रूप–स्वभाव, इनके महल–निवास, इनकी विहार स्थलियाँ, वन–कुंज, निकुंज इनकी सम्पूर्ण लीलाएँ अप्राकृत हैं–जो अप्राकृत क्षेत्रमें, अप्राकृत मन–बुद्धि–शरीरसे अप्राकृत पात्रोंमें होती हैं ।

ये राधाकृष्ण परिपूर्णतम परमात्मा हैं । इनके धाम, लीला–पात्र, नन्द–यशोदा, सखागण, गोपियाँ, इनके घरके पशु–पक्षी, यहाँ तक कीट–भृंग तृण–गुल्म भी सच्चिदानन्दघन निखिल ऐश्वर्य माधुर्य और सौन्दर्यके सागर हैं। इन श्रीराधाकृष्णका ऐश्वर रूप ही भगवान् सुन्दरेश्वर एवं भगवती त्रिपुरसुन्दरी कामेश्वर–कामेश्वरी हैं । इन श्रीराधाजी, श्रीरुक्मिणीजी, श्रीसीताजी आदिमें भी कोई भेद नहीं है । भगवान्‌के विभिन्न सच्चिदानन्दमय दिव्य लीला विग्रहोंमें विभिन्न नाम रूपोंसे उनकी ह्लादिनी शक्ति साथ रहती ही है । नाम रूपों एवं लीलामें पृथक्ता दीखने पर भी वस्तुतः वे सब एक ही हैं ।

ब्रह्मवैवर्त पुराणमें इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है –

यथा त्वं राधिका देवी गोलोके गोकुले तथा ।
बैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्भवती च सरस्वती ।।
भवती म र्यलक्ष्मीश्च क्षीरोदशायिनः प्रिया ।
धर्मपुत्रवधूस्त्वं च शान्तिर्लक्ष्मीस्वरूपिणी ।।
कपिलस्य प्रिया कान्ता भारते भारती सती ।
द्वारवत्यां महालक्ष्मी भ ती रूक्मिणी सती ।।
त्वं सीता मिथिलायां च वच्छाया द्रोपदी सती ।।

हे राधे जिस प्रकार तुम गोल क एवं गोकुलमें श्रीराधा रूपसे रहती हो, उसी प्रकार बैकुण्ठमें महालक्ष्मी और ब्रह्मलोकमें महासरस्वतीके रूपमें निवास करती हो । तुम ही क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णुकी प्रिया मर्त्यलक्ष्मी हो । तुम ही धर्म पुत्रकी कान्ता लक्ष्मीस्वरूपिणी शान्ति हो । तुम ही भारतमें भगवान् कपिलकी कान्ता सती भारती हो, तुम ही द्वारकामें महालक्ष्मी रुक्मिणी हो, तुम्हारी ही छाया सती द्रौपदी है । तुम ही मिथिलामें सीता हो ।

भगवान्‌के दिव्य अप्राकृत लीला विग्रहोंका प्राकट्य ही वास्तवमें आनन्दमयी ह्लादिनी शक्तिके निमित्तसे ही है । प्रधानतया भगवान्‌के अवतारोंके चार स्वरूप माने गये हैं–पुरुषावतार, गुणावतार, लीलावतार एवं मन्वन्तरावतार। भगवान्‌ने आदिमें जब लोक सृष्टिकी इच्छाकी तो महत्तत्वादि–सम्भूत षोडश कलात्मक पुरुषावतार धारण किया था । भगवान्‌के चतुर्व्यूह हैं, श्री वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध । भगवान् शब्द मात्र श्रीवासुदेवके लिए ही प्रयुक्त होता है । इन्हीं पुरुषावतारको आदिदेव नारायण भी कहा जाता है । इन पुरुषावतार भगवान् आदिदेव नारायणके तीन भेद हैं । ये आद्यपुरुषावतार

जहाँ षोड़श कलायुक्त पुरुष हैं, ये ही संकर्षण, बलरामजी अथवा लक्ष्मणजी हैं। इन्हीं संकर्षण भगवान्‌को ही कारणार्णवशायी या महाविष्णु भी कहते हैं । पुरुष सूक्तमें वर्णित सहस्रशीर्षा पुरुष ये ही हैं । ये अशरीरी प्रथम पुरुष कारण सृष्टिके {तत्व समूहके} आत्मा हैं । आद्य पुरुषावतारका द्वितीय पुरुषावतार श्री प्रद्युम्न {श्रीभरत} हैं। ये ब्रह्माण्डमें अन्तर्यामी रूपसे प्रविष्ट रहते हैं । ये ही गर्भोदकशायी हैं। इन्हीं पद्‌मनाभ भगवान्‌के नाभि कमलसे हिरण्यगर्भका प्रादुर्भाव होता है ।

यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः
नाभिह्रदाम्बुजासीद् ब्रह्मा विश्वासृजां पतिः ।।
{श्रीमद्भागवत १।३।२}

तृतीय पुरुषावतार श्री अनिरुद्ध {श्रीशत्रुघ्न} हैं । ये अपने प्रादेश मात्र विग्रहसे समस्त जीवोंमें अन्तर्यामी रूपसे स्थित हैं, प्रत्येक जीवमें अधिष्ठित हैं । ये क्षीराब्धिशायी सबके पालनकर्त्ता हैं ।

केचित् स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम् ।
चतुर्भुजं कञ्जरथांग शंख गदाधरं धारणाया स्मरन्ति ।।
{श्रीमद्भागवत २।२।८}

गुणावतार

श्रीविष्णु, ब्रह्मा एवं रुद्र {सत्व, रज एवं तमकी लीलाके लिये} गुणावतार रूपमें प्रकट हैं । इन गुणावतारका प्रादुर्भाव द्वितीय पुरुषावतार श्री प्रद्युम्न {श्रीभरतजी} से होता है ।

द्वितीय पुरुषावतार लीलाके लिये स्वयं ही इस विश्वकी स्थिति, पालन तथा संहारके निमित्तसे तीनों गुणोंको धारण करते हैं । वे गुणोंके अधिष्ठाता होकर विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र नाम ग्रहण करते हैं । वस्तुतः गुण इन्हें लेश मात्र भी वशमें नहीं कर सकते । ये नित्य स्वरूप स्थित ही रहते हैं और अपनी स्वरूपस्थितिमें अच्युत स्थित त्रिविध गुणमयी लीला करते हैं ।

लीलावतार

भगवान् जो अपनी मंगलमयी इच्छासे विविध दिव्य मंगलमयी अनेक विधि विचित्रताओंसे युक्त नित्य नवीन पूर्ण रसमयी क्रीड़ा करते हैं, उस क्रीड़ाका नाम "लीला" है । ऐसी लीलाके लिये भगवान् जो मंगल विग्रह प्रकट करते हैं, उन्हें "लीलावतार" कहा जाता है । चतुस्सन {सनकादि चारों मुनि}, नारद, वराह, मत्स्य, यज्ञ, नर–नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, हयग्रीव, हंस, ध्रुव प्रिय विष्णु, ऋषभदेव, पृथु, नृसिंह, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, वामन, परशुराम, श्रीराम, व्यासदेव, श्रीबलराम, बुद्ध एवं कल्कि ये भगवान्‌के लीलावतार

हैं । इन्हें कल्पावतार भी कहते हैं ।

मन्वन्तरावतार

स्वायंभुव आदि चौदह मन्वन्तरोंमें होने वाले मन्वन्तरावतार कहलाते हैं।

शक्ति–अभिव्यक्तिके भेदसे नाम भेद

भगवानके सभी अवतार परिपूर्णतम हैं । तत्त्वतः तथा स्वरूपतः इनमें न्यूनाधिकता सर्वथा नहीं है । शक्तिकी अभिव्यक्ति इनमें न्यूनाधिक संभव है । इस न्यूनाधिकतासे इनके चार भेद माने गये हैं – आवेश, प्राभव, वैभव और परावस्थ ।

इनमें सनकादि चारों ऋषि, नारद, पृथु, परशुराम एवं कल्किको आवेशावतार कहा जाता है ।

प्राभव अवतारोंके दो भेद हैं । इनमें प्रथम तो बहुत ही थोड़े काल तक रहते हैं, जैसे मोहिनी और हंसावतारादि । वैसे पुराणादिकके प्रणेता वेदव्यास, सांख्यशास्त्रके प्रणेता कपिल, दत्तात्रेय, धन्वन्तरि, ऋषभ आदि इनकी दूसरी श्रेणीमें आते हैं ।

कूर्म, मत्स्य, नर–नारायण, वराह, हयग्रीव, प्रश्निगर्भ, बलभद्र और चतुर्दश मन्वन्तरावतार ये सभी वैभवावतार माने जाते हैं । इनमें कुछ की गणना अन्य श्रेणियोंमें भी है ।

श्रीनृसिंह, श्रीराम एवं श्रीकृष्ण–ये षडैश्वर्यपूर्ण परावस्थावतार हैं । इनमें श्रीनृसिंहका कार्य भी प्रह्लाद रक्षण और हिरण्यकशिपु वध ही है । ये भी अल्पकाल स्थायी हैं । अतएव मुख्य श्रीराम एवं श्रीकृष्ण ही परावस्थावतार कहे जा सकते हैं ।

"एते चांशकलाःपुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयं"

श्रीकृष्णको इनमें स्वयं भगवान् कहा गया है । विभिन्न कल्पोंमें भगवान् श्रीकृष्णको "सितकृष्णकेश" पुरूषावतार का केशावतार भी कहा गया है। महाभारतमें भी अनेक स्थानोंमें इन्हें "नारायण" ऋृषिका अवतार भी कहा गया है। विभिन्न कल्पोंमें भगवान् श्रीकृष्ण ऐसे अंशावतारोंके रूपमें भी प्रकट हुए हैं।

कहनेका तात्पर्य इतना ही है कि ये सभी भगवान्के सच्चिन्मय अप्राकृत विग्रह हैं । जैसे ये अप्राकृत विग्रह हैं, उसी प्रकार भगवान्का सच्चिदानन्दमय अप्राकृत नित्य परधाम सबसे विलक्षण और सर्वोपरि है । इस अप्राकृत नित्य परधामसे अनन्त ब्रह्माण्ड नित्य अनुप्राणित होते रहते हैं। यह धाम सर्वधाम मुकुटमणि होने पर भी सर्वत्र सभीमें व्याप्त और स्थित है । इसकी पाद

विभूतिके एक अंशमें ही समस्त प्राकृत लोकोंकी परिसमाप्ति हो जाती है । इनसे सर्वथा अस्पृष्ट जो त्रिपाद विभूति है, वह अनैसर्गिक, अप्राकृत सच्चिदानन्दमय परम धाम है । इसी परमधामको भक्तजन साकेत, गोलोक, बैकुण्ठ, कैलास, मणिद्वीप आदि अनेक नामोंसे पुकारते हैं । इस परमोज्ज्वल, परम मधुर, परम कल्याणमय, परम सुन्दर, अप्राकृत गोलोक धाम में, वृन्दावन, मथुरा, गोकुल, नन्दग्राम, बरसाना, गिरिराज, विरजा आदि दिव्य शाश्वत अप्राकृत प्रदेश हैं । यह धाम भी भगवान् की भाँति ही सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार, दिव्य, स्वप्रकाश, नित्य सत्य भावमय है । ये साकेत, कैलास, बैकुण्ठादि भेदोंसे अनेक होते हुए भी सत्य–सत्य एक ही है ।

इस चिन्मय धामकी विशेषताओंका वर्णन पूर्वतः किया जा चुका है । भगवान् सत्–चित्–आनन्द पूर्ण हैं । उनके सत् अंशकी शक्तिसे ये चिन्मय अप्राकृत धाम प्रकट होते हैं । ये धाम भगवान्की सन्धिनी शक्तिका विलास होनेसे पूर्णतः भगवद्रूप हैं । इसी प्रकार भगवान्के चिदंशकी शक्तिके विलाससे भगवान्के सभी लीला पात्र और उनकी लीला प्रकट होती है, अतः वह समग्र लीला भी भगवन्मयी ही है । भगवान्की आनन्दांशकी शक्तिका नाम है ह्लादिनी । भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं परमाह्लाद स्वरूप हैं और जिसके द्वारा वे स्वयं आह्लादित होते हैं और दूसरोंको आह्लादित कर सकते हैं, उसका नाम हलादिनी श्रीराधा है।

यहाँ प्राकृत तत्व, तत्वातीत वस्तु और अप्राकृत राज्यमें प्रवेश , अप्राकृत देह, स्वभाव, स्वरूप आदिकी सभी बातें संक्षेपमें कह दी गयी है। वैसे इसका विस्तृत विवरण देने पर तो एक सम्पूर्ण ग्रन्थ ही निर्मित हो सकता है ।

{गोष्ठ, कुञ्ज एवं निकुंज}

पाँचवाँ प्रश्न – बाबा, यह गोष्ठ, कुंज एवं निकुन्जमें क्या भेद है और निभृत निकुंज किसे कहते हैं ? इसे तनिक समझाइये ।

पू. गुरुदेवका उत्तर – भगवल्लीला अर्थात भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनकी हलादिनी शक्ति राधाजीकी ब्रजराज्यमें तीन प्रकारकी लीलाएँ होती हैं । प्रथम गोष्ठ लीलाका अर्थ यह है कि भगवान् माता यशोदा एवं नन्दजीके साथ नन्दभवनमें रहकर अथवा श्रीराधारानी वृषभानुपुरमें अपनी माता एवं अन्य गोपियोंके संग जो लीला–व्यवहार करती हैं, वे गोष्ठ–लीलाके अन्तर्गत हैं । गोष्ठलीलाके अन्तर्गत गो–दोहन, दास–दासियों और गोप–गोपियों द्वारा भगवानकी सेवा, सख्य रसकी भगवान्के साथ तुल्यतामयी रति, ग्वाल बालोंके साथ भगवान्की परम रसमयी क्रीड़ायें, इसी प्रकार राधारानीकी भी वृषभानुपुरमें दास–दासियों एवं सखियों, मंजरियों आदि द्वारा सेवा सन्निहित है । माखन

चोरी आदि सभी लीलायें गोष्ठान्तर्गत ही है । इसी प्रकार वात्सल्य रस घन मूर्त्ति नन्द–यशोदाको जो भगवत्कृपा प्रसाद वितरण है, वह सब गोष्ठान्तर्गत ही है ।

अब मधुर भाव या माधुर्य रसकी जितनी भी लीलायें सखियों एवं श्रीराधारानीके साथ भगवान् श्रीकृष्णकी होती हैं, उनका पर्यवसान कुन्ज अथवा निकुंजमें ही होता है । कुंज लीलामें सखियोंके साथ सम्बन्ध रहता है, किन्तु निकुंज लीलामें सखियोंके लिये स्थान नहीं होता । सखी मात्र श्रीराधारूपी महाभावकी कायव्यूहा है । निकुंज लीलामें प्रवेशके पहले ही ये सभी कायव्यूह रूपा सखियाँ–मंजरियाँ अपनी मूलकाया अर्थात् श्रीराधारानीके अंगोंमें आभूषणोंमें लीन हो जाती हैं । श्रीराधा सर्वसखियोंको अपनेमें समन्वितकर पुष्ट एवं अन्तर्मुखी हुई श्रीकृष्णके चरणोंमें आत्म समर्पण करती हैं । इस लीलाकी द्रष्टा मात्र एक सारिका पक्षी रहती है । निभृत निकुंजमें तो यह सारिका भी श्रीराधारानीके केश–समूहमें लीन हो जाती है । यह अत्यन्त निगूढतम लीला है। निकुंज लीलामें राधाकृष्ण दोनोंका स्वरूप विलास चलता है, परन्तु इसके अन्तमें भगवती श्रीराधा श्रीकृष्ण स्वरूपमें अन्तर्लीन हो जाती हैं । परन्तु आश्चर्य यह होता है कि ज्यों ही महाभाव रसराजमें डूबता है, महाभाव के रसराज होते ही रसराज महाभाव होकर सुप्रकटित हो जाता हैं । जब तक कुंज भंग नहीं होता तब तक महाभाव रसराजमें पर्यवसित होता रहता है और रसराज महाभाव होकर पुनः व्युत्थित होता जाता है । यह स्थिति कब तक होती है कुछ कहा नहीं जा सकता, क्योंकि तब देश–काल किसीकी सत्ता नहीं रहती ।

{कामेश्वरी, कामशक्ति, कामसौभाग्यदायिनी,
कामरूपा एवं कामकलाका अर्थ}

छठा प्रश्न – बाबा, भगवती आद्या शक्तिको कामेश्वरी आदि उपरोक्त नामोंसे क्यों अभिहित किया गया है । इनको इन नामोंसे अभिहित करनेके पीछे कौनसा तत्व–रहस्य है, कृपया इसे समझावें ।

पू. गुरुदेव द्वारा उत्तर – काम सृष्टिका जनक है । यह काम कारण जगतका सर्वोपरि देवता है । भगवती कामेश्वरीकी कृपासे ही जीव प्राकृत कामके आकर्षणसे अतीत हो पाता है । काम पशुको आक्रान्त किये रहता है, परन्तु पशुपतिके सम्मुख आने पर वह भस्म हो जाता है । भगवती कामेश्वरीने कामदेवके भस्म हो जाने पर उसकी राखको अपने नेत्रोंमें अंजनकी तरह लगाकर उसे प्रेमरूपमें परिणत कर दिया था । कामकी प्रेमरूपमें परिणति ही उसकी सर्वोच्च कृतकृत्यता है । इसीलिये भगवती आद्याशक्तिका नाम

कामेश्वरी पड़ा है । भगवतीके सर्वोच्च बारह उपासकोंमें कामदेव प्रमुख हैं और भगवतीकी उपासना कामदेवके आचार्यत्वके कारण काम–विद्या अथवा कादि विद्याके नाम से प्रचलित है ।

इन कामेदवमें जो सर्वजयित्व शक्ति है यह भगवतीकी उपासनाके फलस्वरूप ही है । इसलिये भगवती ही कामदेवमें शक्ति रूपमें निहित हैं । कामदेवको सर्वजयित्व सौभाग्य पद दान देनेके कारण ही इनका नाम सौभाग्यदायिनी पड़ा है ।

भगवती महालक्ष्मीके गर्भसे कामदेवकी भगवान् शिवके द्वारा दहन किये जाने के पश्चात् अनंग भावको प्राप्त करने पर उत्पत्ति हुई थी अतः भगवतीको कामदेवको रूप {आकार} देनेवाली कामरूपा कहा जाता है । भगवती जगदम्बा उन्हें अपनी कलाके रूपमें नेत्रोंमें अंजनवत् धारण करती हैं, इसलिये इन्हें काम कला भी कहा जाता है ।

किसी सत्ताके चरम अंशको आगमशास्त्रमें कला कहा जाता है । कलायें विभिन्न प्रकारकी होने पर भी स्थूल दृष्टिसे दो प्रकार की है–चित् एवं अचित् । विश्व सृष्टिमें कामदेवका अतिशय महत्वपूर्ण स्थान है । कामदेव भी भगवतीकी सृष्टिकी कारण कला है । विश्वमें चित् कला एवं अचित् कला दोनोंके सहयोगसे ही सृजन पालन होता है । आगम शास्त्रोंमें कलाओंसे तत्व रचना होती है और तत्वोंसे भुवनादिकी । पूर्ण अखण्ड सत्ता निष्कल है। शक्ति चिदात्मक होनेसे शक्तिकी शान्तिकला चित्कला है शिवकी शान्ति–अतीत कला भी चित्कला है ।

अनुत्तर शब्दका अर्थ

प्रश्न सातवाँ – बाबा, तंत्र शास्त्रमें अनुत्तरा शब्द भी भगवतीके नामके रूपमें प्रयुक्त है । सौभाग्य अष्टोत्तर शत नामावलीमें अनुत्तरा शब्द आया है । इसे स्पष्ट करें । इसी तरह इस अष्टोत्तर शत नामावलिमें "अनलोद्भवा" शब्द भी आया है । इसे भी जरा खोलकर समझावें । इसी तरह "स्वातंत्र्य" शब्द पर भी तनिक प्रकाश डालें ।

पू. गुरुदेव द्वारा उत्तर – पूर्ण सत्ताका जो चिद्रूप भान है, वही अनुत्तर है । जगतमें ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेय रूप जो त्रिपुटी है उसमें ज्ञाताके साथ जो सम्बन्ध रहता है, उसमें मूलमें भेद रहता है । इसीलिये ज्ञाताका ज्ञेय विषयक जो अनुभव होता है, वह "इदं" रूपमें होता है । जैसे "मैं घर देखता हूँ"–यह घर है इदं और "मैं है" अहं । इन दोनोंका सम्बन्ध "देखता हूँ" क्रियासे सम्बद्ध होता है । परन्तु इस ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेयकी पृष्ठभूमिमें एक परम द्रष्ट है, जो इन्न तीनोंको अभिन्न रूपसे ग्रहण करता है । वह द्रष्टा इन्हें अखण्ड

अद्वय रूपमें जानता है । उसका सर्वत्र अहं रूपमें ही प्रकाश होता है । वह विश्वातीत होने पर भी विश्वात्मक है । लौकिक ज्ञानमें ज्ञाता देहादि द्वारा अविच्छिन्न चैतन्य है । इसलिये उस ज्ञानमें स्थितिके अनुसार इन्द्रियों तथा मन की भी आवश्यकता होती है । परन्तु लोकोत्तर प्रकाशमें जो अनुत्तर स्वरूप स्वतः भान होता है उसमें विशुद्ध-पूर्ण अहंका बोध होता है । इसमें मन-इन्द्रियादि प्रमेयकी आवश्यकता ही नहीं । इसमें मन-इन्द्रिय न होकर भी अखण्ड ज्ञान है । यह ज्ञान अद्वैत है । तंत्र शास्त्रमें इस अनुत्तर दशाकी "अ" मातृकासे व्याख्याकी गयी है ।

शक्तिका प्रादुर्भाव ज्ञानसे ही संभव है । भगवती चित् शक्ति हैं । "विमर्श" शब्दकी व्याख्या करते समय यह स्पष्ट कर दिया गया है कि सत्ता, ज्ञान एवं आनन्दमें सत् शक्ति संधिनी, चिच्छक्ति चिति एवं ह्लादिनी शक्ति निहित रहती है । इसीलिये भगवती "चिदग्नि कुण्ड सम्भूता" नाम दिया गया है । ये ज्ञान स्वरूप चिज्ज्योतिके कुण्डसे ही प्रादुर्भूत होती हैं । अनल शब्द इस ज्ञानाग्नि, चिदग्निका ही परिचायक है । अनलोद्भवाका अर्थ ज्ञानाग्निकुण्ड सम्भूता ही मानना चाहिये ।

इसी प्रकार आत्माका जो निरपेक्ष भाव है, उसे स्वातंत्र्य कहा जाता है। भगवती आद्याशक्ति पूर्ण परमात्मा हैं । उनकी ही इच्छा मात्रसे सब कुछ होता है, उनकी इच्छामें बाधा देने वाली कोई शक्ति न तो हुई थी, न हुई है और न ही होनी संभव है । जो स्वतः स्फूर्तिशील एवं नित्य वर्त्तमान है, वही स्वातंत्र्य है ।

पू. गुरुदेव श्री राधाबाबाकी मातृ साधना एवं पराम्बाका साक्षात्कार

पू. गुरुदेवकी तन्त्र साधना दक्षिण मार्गकी साधना थी । सन् १९४५ ई. तदनुसार विक्रम सं. २००१–२००२ में मेरे पूर्वाश्रमके मामाजी श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके साथ मैं गोरखपुर चला आया था । इन्हीं दिनों मैंने उनकी पूजा देखी थी । वे चतुः प्रहर चार पूजा प्रतिदिन किया करते थे । रात्रिके द्वितीय प्रहरमें उनकी तुरीय पूजा हुआ करती थी ।

मैं उनकी पूजा देखकर मुग्ध हो जाता था । पू. गुरुदेव मौन रहा करते थे । वे मात्र "राधा राधा" शब्द ही बोला करते थे मानसिक रूपसे वे सभी मंत्र अवश्य बोलते थे, परन्तु इन मंत्रोंके पीछे भी उनका "राधा राधा" सम्पुट अवश्य लगता था । पूजा करते–करते पू. गुरुदेव इतने तल्लीन हो जाते थे कि उनके सम्मुख उनके इष्टकी ध्यान जन्य मानस मूर्त्ति प्रत्यक्षवत् प्रकट हो जाती थी ।

पू. गुरुदेव पूजामें इतने एकाग्र रहते थे कि उन्हें किसी भी बाह्य व्यक्तिके आने–जानेका ध्यान ही नहीं रहा करता था । वे पूजा करते समय अपनी कुटियाका द्वार उढ़का लेते थे, उनकी कुटियामें भीतरसे कुण्डी लगाने का यद्यपि साधन था, फिर भी भीतरसे वे कुटिया कभी बन्द नहीं करते थे। एक दिन जब मैं उनके पास पहुँचा वे पूजा कर रहे थे । कुटिया उढ़की पाकर मैं बाहर बैठ गया एवं उनकी पूजा समाप्तिकी प्रतीक्षा करने लगा । प्रति प्रहर–पूजामें उनको सवा–डेढ़ घन्टेका समय लगा करता था । मैंने उनकी कुटियाके बाहर बिछे एक लकड़ीके तख्ते पर बैठकर नाम–जप करना प्रारम्भ कर दिया ।

अचानक श्रीपोद्दार महाराज आये । उन्हें अचानक किसी कार्यवश गोरखपुर शहरसे बाहर दूसरे नगर जाना पड़ रहा था । श्रीपोद्दार महाराजने श्री गुरुदेवको पूजाके मध्य ही कुटियाका द्वार खोलकर सूचना देदी कि वे गोखपुरसे बाहर जा रहे हैं एवं गुरुदेव पूजा समाप्त करके उनके साथ चलनेकी रेलयात्राकी तैयारी कर लें । पू. गुरुदेव पूजामें इतने तल्लीन थे कि उन्होंने न तो कुछ सुना और न ही उन्हें श्रीपोद्दार महाराजके आनेका ही भान हुआ। पू. गुरुदेवको यदि पोद्दार महाराज द्वारा दी गई सूचना सुनाई पड़

जाती तो संभव है वे संक्षेपमें अपनी पूजा सम्पादित कर लेते । जब उन्हें कुछ सुनायी ही नहीं पड़ा तो सम्भवतः उन्होंने अपनी पूजा यथाक्रम ही सम्पादित की । पू. गुरुदेव जैसे ही पूजा करके उठे, श्री पोद्दार महाराज उन्हें ले चलनेकी त्वरा करने लगे । उनकी ट्रेन छूटनेका समय हो रहा था। अभी तो गुरुदेव ने अपना सामान भी नहीं समेटा है, यह देखकर दोनों में विवाद हो गया । श्रीपोद्दार महाराज कहें कि मैं स्वयं आकर सूचना दे गया था और श्री गुरुदेव कहें कि मुझे सूचना मिली ही नहीं, यदि मिल जाती तो मुझसे यह असावधानी होती ही नहीं, मैं आपसे पूर्व तैयार मिलता । अन्तमें अत्यन्त संकोचपूर्वक मुझे मध्यस्थ होना पड़ा । मैंने पू. गुरुदेवसे कहा – "बाबा ! श्रीपोद्दार महाराज आये थे, परन्तु आप पूजामें संलग्न थे ।" तब जाकर यह रहस्य खुला कि अर्चना करते समय बाह्य क्रिया सम्पादित होते हुए भी उनकी तल्लीनता इतनी अधिक थी कि खुली आँखों वे पोद्दार महाराजको न तो देख सके, न ही उनकी बात हृदयंगम कर सके ।

पू. गुरुदेवने एक बार अंग–न्यास कर न्यासकी साधना समझाते हुए मुझे स्पष्ट कहा था कि न्यास करते समय उनके सम्मुख मंत्र तेजोमय वर्णरूपसे शरीरमें सन्निविष्ट दृष्टिगोचर होते हैं । उन्हें पुस्तक, माला, पूजापात्र सभी दिव्य चिन्मय रूप धारण किये सम्मुख उपस्थित दिखते हैं ।

पू. गुरुदेव सम्पूर्ण अक्षरोंकी अधिदेवी भारतीकी पूजा पंचोपचारसे करते, तत्पश्चात् सम्पूर्ण मातृकाओंको शक्ति–प्रणवमें और प्रणवको ब्रह्मरंध्रमें प्रविलुप्त कर लेते थे । वे जब "लं" बीजका उच्चारण करते तो भूमि देवी कनकके अण्डेके समान दैदीप्यमान हुई उनके सम्मुख उपस्थित होती थीं, तत्पश्चात् विशुद्ध मुकुरके समान परम स्वच्छ निर्मल सच्चिन्मय ब्रह्मरंध्रमें विलीन हो जाती थी । इसी प्रकार "वं" बीजका उच्चारण करने पर चन्द्रार्ध प्रकट होता था, उसके पश्चात् उसमेंसे दो पद्म प्रकट होते थे जिनमें अमृत संपुटित होता था । यह अमृत भी उनके ब्रह्मरंध्रमें विलीन हो जाता था । इसी प्रकार "रं" उच्चारण करने पर सर्वत्र विलक्षण अग्निमण्डल प्रकट होता था । परन्तु यह परम चिन्मय अग्निमण्डल उनके रोम–रोमको विलक्षण तेज सम्पन्न करता हुआ ब्रह्मरंध्रमें विलीन हो जाता था । वे जब "यं" बीजका उच्चारण करते तो धूम्राभा धारण किये वायुदेव प्रकट होते थे, वे भी उनके प्राणोंसे एकात्म हुए उनके दसों प्राणोंको ऊर्ध्व गति देते ब्रह्मरंध्रमें विलीन हो जाते । "हं" बीज उच्चारण करने पर पू. गुरुदेव सर्वव्यापी शून्यसे एकात्म हुए पूर्ण चिदात्मक हो उठते थे । इस चिदात्मकताके महासमुद्रसे उनका भाव शरीर व्यक्त होता था, इसी पूजनोपयोगी भाव शरीरसे पू. गुरुदेव आद्याशक्ति त्रिपुराकी सेवामें संलग्न

होते थे । भगवतीका पूजन उनका यह चिन्मय पूजनशरीर ही किया करता था ।

पू. गुरुदेवकी मन्दिर पूजाका वर्णन पिछले अध्यायमें किया ही जा चुका है । पू. गुरुदेव कभी–कभी पूजा करते–करते बहुत ही सुन्दर गाने लगते । उनका कण्ठ अतिशय सुरीला था । वास्तवमें पू. गुरुदेव जब बहुत ही विरहमें होते तभी गाया करते । अपनी विरहव्याकुल दशाका हाहाकार कहीं उनके बाह्य शरीरमें व्यक्त नहीं हो जाय, उसे संगोपित करनेके लिये ही गुरुदेव गाने लगते । जिसने भी पू. गुरुदेवका गायन सुना है, वह उसे कभी भी विस्मृत नहीं कर पावेगा । अतिशय मधुर कोकिलकण्ठी ध्वनिमें वे गाते थे । यद्यपि उनके गायनके वास्तविक बोल तो प्रच्छन्न ही रहते थे, बैखरी वाणीमें उनका "राधा" "राधा" शब्दोच्चारण ही सबको श्रवणगोचर होता था । सुनने वाला व्यक्ति मंत्र मुग्ध हुआ सा उनके गायनमें डूब जाता था । पू. गुरुदेव तभी तक गाते थे जब तक वे ऐसा समझते कि वे गा रहे हैं और उनका इष्ट उनका गायन सुन रहा है । किसी दूसरेका अस्तित्व आस–पासमें सुनने वालेके रूपमें अनुभव होते ही वे तुरन्त गाना बन्द कर देते थे । पू. गुरुदेव जब गायन करते होते उस समय वे इस विश्व और अपने विगत शरीरको सर्वथा भूले रहते थे । अनेक अवसरों पर मैं चुपचाप निष्पन्द उनके पास घण्टों बैठा रहता और उनकी सुमधुर स्वरलहरीमें डूबा रहता । उन्हें मेरे आगमनका बोध ही नहीं होता था । मैं देखता, गाते समय उनकी आँखोंसे लगातार अश्रुधारा बहती जाती थी । अश्रुओंसे उनका वक्षस्थल भीग जाता था ।

पू. गुरुदेव यद्यपि श्रीराधाकृष्णके मधुरोपासक थे, परन्तु मातृ उपासनाके समय वे पूरे तांत्रिक आचार्य होते थे । तंत्र शास्त्रकी गोपनीयसे गोपनीय बातें और उपासनाके अंग उन्हें ज्ञात थे । यही दशा श्री पोद्दार महाराजकी भी थी । श्री पोद्दार महाराजको ऊपरसे देखकर कोई नहीं पहचान पाता था कि वे सिद्ध तांत्रिक भी हैं ।

पू. गुरुदेवकी श्रीक्रमकी पूजा तो प्रत्येक प्रहर डेढ़ घन्टे होती थी, इस प्रकार उन्हें लगभग दिनभरमें छः घण्टेका काल तो भगवतीकी पूजामें ही लगता था, शेष समयकी साधनामें उन्होंने कोटि नामावलि जपका संकल्प किया हुआ था । अपनी कुटियामें वे ऊनी आसन पर उत्तराभिमुख बैठकर पूजन किया करते थे । नामावलि जपके दैनिक क्रमको पूर्ण करनेके लिये उन्हें चौदह–चौदह घण्टे आसन पर बैठना पड़ता था । प्रत्येक उपासनाके लिये उन्हें कम–से–कम एक सहस्र सुगन्धित पुष्पोंकी आवश्यकता होती थी।

उन दिनों श्रीकेदारजी कानोडिया अपनी पत्नी सहित गीतावाटिकामें ही श्री पोद्दार महाराजके पास ठहरने आये हुए थे । ये गीताप्रेसके ट्रस्टी श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडियाके छोटे भ्राता थे । श्री पोद्दार महाराजने इनके जिम्मे वाटिकाका पुष्प प्रबन्ध दे रखा था। इनके संरक्षणमें चार माली केवल इसीलिये नियुक्त थे जिससे सभी को पूजनार्थ पुष्प प्राप्त हो जावें । पू. गुरुदेवके लिये प्रतिदिन चार हजार सुगन्धित पुष्प गिनकर तुड़वाकर टोकरियोंमें भरकर भिजवाना श्रीकेदारजीकी ही सेवा थी । यद्यपि इन्होंने बहुत दिनों तक अति अध्यवसाय पूर्वक सेवाकी, चेष्टाकी, परन्तु मालियोंके प्रमादवश कभी–कभी सुगन्धित पुष्पोंका अभाव हो उठता था । पू. गुरुदेव अपने कारण मालियोंको अनुशासित करवाना भी नहीं चाहते थे और बिना अनुशासन एवं भयके कोई नियमित कार्य करना नहीं चाहता था । गीताप्रेस पुष्पोंके लिये अधिक अर्थ भार सहने को भी तैयार नहीं था । इन उलझनोंमें पू. गुरुदेवको अपनी उपासना विधिमें परिवर्तन करना पड़ा और पुष्पोंके स्थान पर अक्षतार्चन प्रारम्भ किया गया । अक्षतार्चनमें भी क्षत चावलोंका प्रयोग नहीं होनेके कारण अक्षत चावल छाँटनेके कार्यमें कठिनाई आने लगी । चावल चुननेमें घण्टों समय लगता और यह कार्य करनेमें गृहस्थ स्त्रियाँ किनारा करने लगीं। पू. गुरुदेवने इस कठिनाईको देखकर रक्त चन्दन एवं कुंकुमका प्रयोग प्रारम्भ किया । कुंकुम पू. गुरुदेव स्वयं ही निर्माण करते थे, क्योंकि बाजारोंमें उपलब्ध कुंकुम शुद्धतापूर्वक तैयार नहीं होती थी, उसमें अन्य वर्जित केमिकल और रंग मिलाये जाते थे । पू. गुरुदेव हल्दीको चूनेके संयोगसे रँग कर गंगाजलमें शुद्ध कुंकुम निर्माण करते थे ।

लालचन्दन घिसना एवं सभी पूजा सामग्री संयोजन करनेका उत्तरदायित्व भाई श्रीरामसनेहीजीने वरण कर रखा था । अब पू. गुरुदेवका जप एवं अर्चन सुव्यवस्थित होने लगा ।

पू. गुरुदेवका जीवन उन दिनों उपासना, ज्ञान एवं प्रेमयोगकी त्रिवेणीका अभूतपूर्व संगम था । यद्यपि भावसे वे पूरी प्रेमयोगमें डूबी गोपी थे जो पूर्ण रस–विलासमें आपाततः निमग्न थी, परन्तु उनकी जीवनचर्या इतनी तपक्लिष्ट थी कि रस निर्झरिणी कहाँ बह रही है, बाहर से कुछ भी पता नहीं चलता था। श्रीकृष्ण प्रेमलीला राज्यमें उनकी अवस्थिति यद्यपि बहुत ही प्रगाढ़ थी, उससे विचलित होनेका तो प्रश्न ही नहीं था, परन्तु साथ ही साथ उनकी मातृ साधना भी अति वेग पूर्वक बढ़ रही थी जिसका दिग्दर्शन मात्र उनकी दैनिक जीवनचर्या ही कराती थी ।

पू. राधाबाबा प्रायः रात्रिमें प्रतिदिन डेढ़ दो बजे उठ जाते थे । वे शौच जाकर स्नान कर ध्यानादिमें बैठ जाते थे । प्रातः लगभग पाँच बजे वे पुनः शौच जाकर स्नान कर लेते । दिनमें वे पाँच बार शौच जाते थे और चाहे सर्दी, गर्मी, बरसात कैसी भी ऋतु क्यों न हो, पाँचों बार उनकी स्नान क्रिया आवश्यक होती। अपने हाथों कुएसे पानी निकालकर अथवा हैण्डपम्प चलाकर कमण्डलु भरकर स्नान करनेका उनका नियम था । प्रातः स्नान करके वे श्रीपोद्दार महाराजके अपने निवाससे बाहर आनेकी प्रतीक्षा किया करते थे । श्रीपोद्दार महाराजको महासिद्ध सन्त माननेके कारण वे प्रतिदिवस प्रातः ही उनके दर्शन किया करते थे । ज्योंही श्री पोद्दार महाराजके कलेवर पर उनकी दृष्टि पड़ती, उनके इस प्रथम दर्शनसे ही दिवस भरकी साधनाका उनका क्रम प्रारम्भ हो जाता । भगवतीका प्रातःकालीन पूजन अर्चन वे सर्वथा एकान्तमें अपनी कुटियाका दरवाजा उढ़काकर किया करते । प्रतिदिवस चार हजार पुष्पार्चन करनेके कारण ये निर्माल्य पुष्प उनकी कुटियाके पार्श्वमें एक गड्ढेमें डाल दिये जाते, आगे जाकर इसी गड्ढेमेंसे स्वतः ही एक अमरूदका वृक्ष प्रकट हो गया । यह गड्ढा पट जाने पर फिर दूसरा गड्ढा बनाया गया, वहाँ भी एक बिल्व वृक्ष लग गया । इन वृक्षोंके फल अपूर्व सुगन्धि एवं विलक्षण मधुर स्वादसे भरे होते थे। ये वृक्ष आज भी सर्वपूज्य एवं दर्शनीय हैं ।

चौबीस घंटोंमें मात्र एक बार ही मध्यान्हमें अथवा सायंकाल सूर्यास्तसे पूर्व पू. गुरुदेव भिक्षा किया करते थे । भिक्षामें गाढ़ा तीन चार सकोरे दधिका मट्ठा वे अवश्य पिया करते थे । अन्न भोजनके पश्चात् सेव आदि फल भी वे अवश्य लेते थे । भोजनमें शाक एवं चावलकी मात्रा पर्याप्त रहती थी । वे एक ही प्रकार का शाक परवल, लौकी एवं बथुआ अथवा चौलाई या पालक का मिश्रणकर उबालकर खाते थे । इनकी भिक्षामें नमक सर्वथा ही नहींके बराबर होता था । भिक्षाके पश्चात् वे अपनी पत्तल स्वयं ही उठाकर फैंकते थे । भिक्षाके पूर्व तुलसीदलसे वे भोग लगाया करते और भोग लगा प्रसाद कभी उच्छिष्ट नहीं छोड़ते । एक बारकी घटना है कि जमीकन्दकी सब्जी उनकी पत्तलमें किसीने प्रमादवश कच्ची ही परोसदी । वे उसे भोग लगा चुके तब किसीके द्वारा उसके कच्चेपनकी बात ज्ञात हुई । उसने मना भी बहुत किया परन्तु फिर भी समूची कच्ची जमीकन्द पू. गुरुदेवने उदरस्थ कर ली । इसके फलस्वरूप उनकी भोजन नली और आमाशयमें घाव हो गये। वे उस घावके कारण तीन दिवस तक पानी पीनेमें भी कठिनाई अनुभव करते रहे । भोजनतो उनसे निगला ही नहीं गया । चौबीस घण्टोंमें मात्र एक बार भिक्षा के अतिरिक्त वे कभी भी कोई वस्तु मधु, नीबू, शिकञ्जी, फलोंका रस कुछ भी

ग्रहण नहीं करते थे । उनके पानी पीनेका निश्चित समय हुआ करता था और एक बारमें वे ढ़ाई–तीन किलो पानी धीरे–धीरे अवश्य पिया करते थे । प्रत्येक एकादशीके दिवस वे फलाहार करते और प्रत्येक सोमवारका व्रत करते समय सायंकाल पूजा होने तक वे जल भी ग्रहण नहीं करते, निर्जल निराहार रहते । इसी प्रकार प्रदोष के दिन भी वे सायंकाल प्रदोष पूजन करके ही जल ग्रहण करते थे । वे चतुर्थी व्रत भी करते थे और मास में कृष्ण पक्षकी चतुर्थीको चन्द्रमा देखकर ही भिक्षा किया करते थे । अनेक बार ऐसा होता था कि वर्षा ऋतुमें बादलोंके कारण चतुर्थीका चन्द्रमा दिखता ही नहीं था, उस दिन जब तक चन्द दर्शन न हो वे भिक्षा नहीं करते थे । वे मुद्रा स्पर्श नहीं करते थे और यदि कोई मुद्रा स्पर्श करा देता उस दिन वे निराहार उपवास करते । इसी प्रकार किसी भी स्त्रीका यदि कभी भी असावधानीसे भी उनसे वस्त्र स्पर्श हो जाता तो वे उस दिन अवश्य उपवास करते । उन्हें महीनों मलेरिया बुखार आता था, उस समय भी उनका सब पूजन क्रम, पाँचों प्रहरका स्नान उसी प्रकार चलता था । भयानक रूपसे रोगाक्रान्त होने पर भी उनके उपासना क्रममें व्यवधान कभी नहीं हो पाता था ।

पू. गुरुदेव श्रीपोद्दार महाराजके शरीरको सचल वृन्दावन मानते थे और उन पर उनकी अटूट श्रद्धा यावज्जीवन रही । उनका अमोघ विश्वास था कि जो वस्तु जन्म जन्मान्तरकी साधना सम्पन्नता नहीं प्रदानकर सकती, वह चिन्मय वस्तु श्रीपोद्दार महाराजके शरीर सान्निध्यसे प्राप्त हो सकती है । जो परमातिपरम दुर्लभ श्रीकृष्ण प्रीतिपद उच्च साधना सम्पन्न महायोगियोंके लिये अलभ्य है, वह श्रीपोद्दार महाराज अपने सहज अनुग्रहसे किसी अधमाधम जीवको भी दान कर सकते हैं । श्रीपोद्दार महाराजके प्रति ऐसी उत्कट माहात्म्य बुद्धि एवं श्रद्धा होनेके फलस्वरूप पू. गुरुदेव यावज्जीवन उनके छायावत् साथ रहे और उनकी मृत्युके पश्चात् भी उनकी चितास्थलीमें ही उनका जीवन व्यतीत हुआ ।

पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाके अंगोंसे एक दिव्य गंध सदैव निकला करती थी । वह मूलतः पद्मगन्धके समान होती थी । मैंने वैसी मीठी गन्ध वल्लभ सम्प्रदायके मन्दिरोंमें भी नहीं पायी, जहाँ ग्रीष्म ऋतुमें ढेरों गुलाब, केवड़ा और कमलोंकी भगवान्के श्रीविग्रहोंके श्रृंगारके समय बहार रहती है। पू. गुरुदेवकी अंग गंध परिवर्त्तित होती रहती थी । प्रातःकाल जब मैं उनके पास जाता तो अति भीनी कस्तूरी महकती होती, कभी तुलसी वनकी सी गन्ध प्रवाहित होने लगती । मध्यनिशाके पश्चात् मैं प्रायः उन्हें व्रजरसके कीर्त्तन सुनाने जाता तो इतनी मधुर सुगन्ध उनकी कुटियामें परिव्याप्त रहती कि मैं

चकित हो जाता था । मैं सोचता आसपासमें कहीं रजनीगन्धा महक रही होगी, परन्तु इस सुगन्धके परिवर्तन होने पर ऐसा अनुमान होता था कि संभव है बहुत सी गोपियाँ भावदेहसे वहाँ अवस्थित हों और उनकी भिन्न-भिन्न अंगगंध मेरी घ्राणेन्द्रिय में प्रवेश पा रही हों ।

पू. गुरुदेव जिस कुटियामें रहते थे वहाँ उनके सिरहाने की खिड़कीके तलमें एक बिलमें घोर करैत सर्प निवास करता था । वह पूज्य गुरुदेवके आसपास कभी घूमता फिरता भी था । पूज्य गुरुदेव अनवरत बारह वर्ष तक उसके सहवासी रहे । न तो गुरुदेवने उसे वहाँसे हटाया न ही वह भी पूज्य गुरुदेवके सामीप्यको छोड़कर कहीं गया । हम लोग कभी-कभी रात्रिमें जब उनकी कुटियामें जाते तो गुरुदेव कह दिया करते थे-"भाई ! यहाँ मेरा सहवासी सर्प अभी नीचे घूम रहा है, उसे पैरोंसे कुचलना मत, वह तुमको कुछ नहीं कहेगा । डरना मत । एक बार पू. गुरुदेव जब बारह माह गोरखपुरसे दूर राजस्थान श्रीपोद्दार महाराजके साथ उनके ग्राम रतनगढ़ आ गये तो पीछेसे गीतावाटिकाके प्रबन्धकोंने पू. गुरुदेवकी कुटिया मरम्मतके लिये उखाड़ दी । उस अवसर पर नयी खिड़की एवं दरवाजे भी लगाये गये । तब उस विषधर सर्पको मजदूरोंने मार डाला । पू. गुरुदेव उसकी मृत्यु पर बहुत ही दुखी हुए और उन्होंने उसके लिये गीता एवं विष्णु सहस्रनामके अनेकों पाठ कराये ।

पू. गुरुदेवकी कुटिया गीतावाटिकाके बहुत पिछवाड़े वन क्षेत्रमें थी । वहाँ चतुर्दिक वृक्षोंके सूखे पत्ते बिखरे रहते थे । अस्तव्यस्त वन क्षेत्र वर्षा ऋतुमें असंख्य मच्छरों, विशाल सर्पो और विषैले बिच्छुओंका आवास बना रहता। रातको प्रायः लघु चहार दिवारी लाँघकर सियारों एवं भेड़ियोंका पदार्पण भी हुआ करता । ऐसे विषम वातावरणमें अकेले पू. गुरुदेव बिना मछहरीके अपनी कुटियाके आगे खुले दालानमें सोते रहते थे । उन दिनों उस क्षेत्रमें बिजली भी नहीं थी, अतः मात्र लालटेनके टिमटिमाते प्रकाशमें ही सारी रात बितानी पड़ती । वर्षा ऋतुमें जब वायु-प्रवाह रुक जाता, भीषण डाँस और विशाल सूँडी मच्छर असंख्य झुण्डोंमें देह पर आक्रमण करते, उस समय बिना मछहरी वहाँ रहना, सोना और रात बितानी असंभव एवं सर्वथा असहज थी, फिर भी गुरुदेव ने अपने जीवनके पन्द्रह वर्ष इन्हीं मच्छरोंके मध्य बिताये और कभी भी मछहरीका प्रयोग नहीं किया । उनके शरीरमें ऐसा कोई अलौकिक तेज था, संभव है जिससे ये विषैले जन्तु उन्हें नहीं काटते थे ।

एक बार श्रीपोद्दार महाराज गोवर्धन परिक्रमा करने गये थे । उनके साथ सैकड़ों व्यक्ति परिक्रमा कर रहे थे। भगवन्नामकी तुमुल ध्वनिमें संकीर्त्तन

करते हुए परिक्रमा यतीपुरा ग्राममें श्रीमथुराधीशके दर्शनार्थ पहुँची । श्रीमथुराधीश उन दिनों ब्रजमें ही विराजित थे । अचानक संकीर्त्तनमें ढोल, झाँझ, मृदंगके बजनेसे एक स्थान पर छाता लगाये बड़ी संख्यामें मधुमक्खियाँ बिफर गयीं । यात्रियोंको मधुमक्खियोंने इस बुरी तरह से काटा कि अनेक लोगोंको अस्पताल ले जाना पड़ा । मैं पू. गुरुदेवके पास ही खड़ा था । मैंने देखा सैकड़ों मधुमक्खियाँ पू. गुरुदेवके आसपास क्रुद्ध हुई मँडरा रहीं थीं परन्तु एक भी उनके अंगोंमें दंशतक नहीं कर रही । यहाँ तक कि उन्होंने मुझे भी भागनेसे मना कर दिया और कहा कि बचना चाहता है तो निर्भीक मेरे पास बिना प्रतिरोध किये खड़ा रह । मैं आश्चर्य चकित था । पू. गुरुदेवकी देहमें एक ऐसा विलक्षण तड़ित्प्रवाह सदा रहता था, जिसके फलस्वरूप हिंसक जीवोंका क्रोध उनके सम्मुख शान्त हो जाता था ।

पू. गुरुदेव काम, क्रोध, लोभ, मोहादि सभी बन्धनोंसे सर्वथा मुक्त तो थे, उनमें भगवती आद्या शक्तिके प्रति शुद्धा भक्ति एवं पूर्ण प्रेममय समर्पण व्यक्त हो ही चुका था । गुरुदेव सत्ताईस लाख अर्चन भी सम्पादित कर चुके थे । अब वह काल भी अति सन्निकट आ गया जब उन्हें भगवती त्रिपुरसुन्दरीका पूर्ण कृपा प्रसाद प्राप्त होना अवश्यंभावी था । माँके परम मंगलमय दर्शन होनेकी बेला समुपस्थित हो, उनके पूर्व भगवती आद्याशक्तिने उनकी भीषण परीक्षा ली।

घटना बीस जनवरी १९५१ की है । पू. गुरुदेव स्वयं ही जल निकालकर कूएकी जगत पर खड़े स्नान करने जा रहे थे । गोरखपुरमें सर्दियोंमें प्रायः वर्षा होती ही है । उस दिन भी आकाश मेघाच्छन्न था । कुएँकी जगत पर पर्याप्त काई वर्षाके कारण जम गयी थी । पू. गुरुदेव काष्ठ निर्मित खड़ाऊ पहने दतुअन करके जैसे ही स्नानार्थ कुएँ पर चढे कि काईसे उनकी खड़ाऊ फिसल गयी । वे धड़ामसे पृथ्वी पर गिर पड़े । गिरते ही एक बार तो उन्हें मूर्च्छा आ गयी । श्रीरामसनेहीजी नामक परिचारकने उन्हें उठानेकी चेष्टा की, परन्तु उसकी वह चेष्टा सफल नहीं हो पायी । श्रीरामस्नेहीजीकी पुकार पर अनेक लोग दौड़े आये, श्री पोद्दार महाराज भी आये । पू. गुरुदेवको जब चेतना हुई तो उनके दाहिने कन्धेमें भीषण पीड़ा थी । यह पीड़ा ही स्वयं बता रही थी कि उनकी कोई हड्डी टूट गई है ।

पू. गुरुदेवको उठाया गया । उनके कीचड़ सने वस्त्र बदले गये । श्रीपोद्दार महाराज गुरुदेवको अस्पताल ले गये । वहाँ डाक्टर श्रीमाथुर साहबने एक्सरे किया तो पता चला कि उनकी हँसुलीकी हड्डी (Collar Bone) टूट गयी है । सभी सन्देह दूर हो गये और सही स्थिति सामने आ गयी ।

पू. गुरुदेव श्रीपोद्दार महाराजके साथ गीता वाटिका चले आये । अब चिकित्साका प्रश्न उठा । चिकित्सा पू. गुरुदेवको यति धर्मके अनुसार स्वीकार थी नहीं । श्रीमाथुर साहबका आग्रह प्लास्टर बँधवानेका स्वाभाविक ही था, जो पू. गुरुदेवको कदापि स्वीकार्य नहीं था । अब यही मध्यम मार्ग निर्धारित हुआ कि कम्बलको पट्टीकी तरह प्रयोग लेते हुए गेरुए वस्त्रसे उसे काँखमें बाँधा जाये, जिससे हड्डी इधर–उधर नहीं हो, ठीक स्थिति पर बनी रहे । परन्तु पू. गुरुदेव प्रतिदिन चार बार स्नान करते ही थे। प्रतिदिन चार बार स्नानके पूर्व पट्टी हटा दी जाती थी और पुनः उसे स्नानके पश्चात् बाँधी जाती थी । इन दिनों श्रीमाथुर साहबने पू. गुरुदेवकी अतिशय सेवाकी ।

पू. गुरुदेव अपने नियमों एवं आचारमें अटल थे । इस अवस्थामें भी उन्हें प्रति दिवस बार–बार चारों पहर सहस्रार्चन करना ही था । शरीरमें भीषणतम पीड़ा थी । हँसुली की भग्न हड्डी स्नान करते समय एवं पूजार्थ हिलनेके कारण असह्य वेदना देती थी, इसे भला शब्द किस प्रकार प्रकट करें। मस्तिष्क पीड़ासे अतिशय सिहर उठता था, फिर भी अर्चना चारों पहर अक्षुण्ण चलती रही ।

पीड़ाके कारण पू. गुरुदेवको रात्रिमें भी नींद नहीं आती थी । भूख प्यास भी बिदा हो गयी थी । परन्तु उनकी अखण्ड आन्तरिक अनुभूति यही बनी रहती थी कि इस भीषण पीड़ाके रूपमें भगवतीका असीम परम मंगलमय करुणा समुद्रही हिलोरें ले रहा है । जब उन्हें भीषण कष्ट होता तो वे "राधा" "राधा" गान करने लगते । उनकी इस प्रेम–आकुल "राधा""राधा" नाम ध्वनिमें ऐसी अलौकिक माधुरी भरी होती थी कि वनके वृक्ष, लता–पता, समग्र पंचभूत ही शान्त स्तब्ध मानो श्रवणेच्छुक हो उठते थे । पू. गुरुदेवका रोम–रोम उस गायन कालमें मातृप्रेमसे पूर्ण पगा रहता था ।

मैं उन दिनों अपनी जन्मभूमि गया हुआ था । सन्यस्त तो लगभग बाईस वर्ष पश्चात् हुआ था । जैसे ही मुझे उनकी इस दुर्घटनाकी सूचना हुई, मैं गोरखपुर आया । मैं जब गोरखपुर पहुँचा तो वे थोड़े स्वस्थ हो चुके थे। उन्होंने उस भीषण कष्टके समय अपने चित्त की स्थिति और मनकी अवस्थाका वर्णन मुझे सुनाया था ।

वे कह रहे थे – "उस दशामें बाह्य होश मुझे बहुत ही कम रहता था। कष्ट सहनशक्तिके बहुत आगे पहुँच चुका था, फिर भी किसी अज्ञात शक्तिकी सहायतासे सहन तो हो ही रहा था, साथ सम्पूर्ण पूजा अर्चन पूर्ववत् निर्विघ्न सम्पन्न हो रहा था । उस कष्टजनित उन्मत्त अवस्थामें जड़ सृष्टि मेरे सम्मुख चेतन हो उठती थी । ठीक ऐसा अनुभव होता मानो साक्षात् भगवती

ही समग्र पंचभूतात्मक जड़ताके वस्त्र पहने सम्मुख खड़ी हँस रही हैं । वे ही पीड़ाके वस्त्र पहने किसी परम विशेष अनुग्रहकी अदम्य इच्छा लिये मेरे मस्तिष्कको मथ रही हैं । इस प्रकारके प्रगाढ़ घने विचार कुछ क्षण आते फिर सम्पूर्ण तामसिकता छँटने लगती । विशुद्ध सत्व निखरने लगता । माँ महामाया जो चराचरमें ओत–प्रोत है निरावरित मेरे सम्मुख अभूतपूर्व वात्सल्यसे भरी सम्मुख आ जाती। उस समय उनसे मिलकर एक होनेकी उत्कण्ठा इतनी तीव्र हो उठती थी कि रोम–रोम विरहकी भीषण ज्वालामें दहकने लगता । उस विरह ज्वालाका ऐसा ताप होता था कि उसके सम्मुख हड्डी टूटनेका शारीरिक कष्ट तुच्छातितुच्छ प्रतीत होता था । ऐसा लगता मानो अथाह विरह समुद्र है और उसे पार करना मानो पूर्णतया असंभव ही है । वह विरह व्यथा शब्दोंके द्वारा कोई प्रकट कर ही नहीं सकता ।

जब टूटे हुए अवयवोंसे भी अर्चन प्रारम्भ करने बैठता तो शरीरके सभी चक्रोंमें ध्येय मूर्त्ति व्यक्त हो जाती थी। ऊपरसे तो मैं "राधा" "राधा" गाता होता, परन्तु भी तरसे मैं माँ–माँ, मैया–मैया, जननी–जननी, अम्बे–अम्बे, जगदम्बे–जगदम्बे गाता । उस समय अपने विश्वरूपके सभी वस्त्र माँ मुझे पहना देती और मैं अनन्त ब्रह्माण्डोंसे एकात्म एकरूप हो जाता था । फिर मैं अपना सब चोला माँको पहना देता उस समय मेरी ऐसी विलक्षण दशा होती कि क्या कहूँ । चार–पाँच सप्ताहमें पू. गुरुदेव की हड्डी जुड़ गयी थी। वे क्रमशः स्वस्थ होते गये तीन माहके लगभग उसके पश्चात उनका अर्चन क्रम और चला होगा तब तक पू. गुरुदेवके लगभग सत्ताईस लाख अर्चन पूर्ण हो चुके थे ।

उस दिन अक्षय तृतीया का पावन दिन था । नित्य नियमानुसार प्रातः स्नान कर पू. गुरुदेव अर्चन करने अपने आसनमें बैठे थे । उनका आसन उत्तराभिमुख था । आसनके सम्मुख उनका पूजा चित्र स्थित था । अचानक वहाँ एक दिव्यालोक प्रकट हुआ । उस दिव्यालोकमें पू. गुरुदेवके सम्मुख भगवती प्रकट हो गयी । उस अत्यन्त रूपमयीकी वात्सल्य दृष्टिसे सराबोर गुरुदेव वहीं समाधिस्थ हो गये । जब पू. गुरुदेवकी समाधि भंग हुई तो दो बातें पूर्ण आश्चर्यमयी हुईं ।

एक तो अब तक पू. गुरुदेव बहुत प्रयत्न करने पर भी भगवतीके षोड़शाक्षरी महामंत्रका उद्धार नहीं कर पाये थे, वह मंत्र उनके सम्मुख श्री सौभाग्य अष्टोत्तर शत नामावलीसे प्रकट हो गया । इतना ही नहीं षोड़शाक्षरी मंत्रका अपेक्षित अर्थ भी उनकी धारणामें परिपुष्ट हो गया । बादमें पू. गुरुदेव ने श्रीमद् आदि शंकर रचित मंत्रार्थका जब अध्ययन किया तो उन्हें अपने अर्थ

से उसका साम्य पाकर बहुत ही समाधान हुआ । इसके अतिरिक्त दूसरे यावज्जीवन भविष्यमें उन्हें कभी आध्यात्मिक आधिदैविक एवं आधिभौतिक कोई कष्ट न हो, इस प्रकारकी दुःखविघातकसिद्धिकी प्राप्ति भगवतीकी कृपासे हुई। पू. गुरुदेवको भगवतीके दर्शन होते ही सर्वज्ञत्व सामर्थ्य एवं सर्वकर्त्तृत्व शक्तिकी भी सिद्धि हो गयी । परम पारमार्थिक लाभ जो शब्दातीत था वह तो यह था कि वे पूर्ण शिवत्व एवं शक्तिके सामरस्यसे युगपत् एकात्म हो गये । पू. गुरुदेवके पंचभूतात्मक देहके सारे अंग, वाणी, नेत्र, श्रोत्र आदि सभी ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, प्राणसमूह, सम्पूर्ण मानसिक एवं शारीरिक ओज–समग्र रूप ही शिव शक्त्यात्मक सामरस्यके परिणामके रूपमें अभिव्यक्त हो उठा । वह सर्वदेवमयी, सर्व कल्याण निलया, परमाद्या, पराभट्टारिका, सनातनी, भगवती ही उनका स्वरूप है, स्वरूप थी और स्वरूप रहेगी–यह उन्हें स्पष्ट–स्पष्ट निर्भ्रान्त प्रत्यक्ष हो रहा था। माँ जगद्योनि, सर्वगर्भा, सर्व निलयासे उनकी एकात्मता अखण्ड, अक्षुण्ण प्रतिभात हो रही थी ।

वही सनातनी अनादि अनन्त काल तक निरवधि उनके अणु अणुसे साक्षात् हो उठीं । पू. गुरुदेव गुरुदेव रहे ही नहीं वे सर्वकारणभूता सच्चिदानन्दमयी परमात्म शक्ति हो गये । पू. गुरुदेवका समग्र व्यक्तित्व ही उस दिन अपनी अनादिकालीन सर्व परिच्छिन्नताओंसे मुक्त हुआ अक्षय, असीम आह्लाद सिन्धुमें पूर्ण स्वातंत्र्य समन्वित हुआ विलीन हो गया ।

स जयति महान् प्रकाशो यस्मिन् दृष्टे न दृष्यते किमपि ।
कथमिव तस्मिन् ज्ञाते सर्वं विज्ञात मुच्यते वेदे ।।

उस महा प्रकाशकी जय हो, जिसके दर्शन होने पर बस वही दृश्य रहता है और सम्पूर्ण इतर दृश्य बाधित हो उठते हैं, जिसको किंचित् भी जान लेने पर सब जान लिया जाता है, यह बात वेद प्रमाण पूर्वक कहते हैं।

व्रजरज उडि मस्तक लगै, मुक्ति मुक्त ह्वै जाय

श्रीराधाकृष्ण तत्व सर्वथा अप्राकृत है । इनका विग्रह अप्राकृत है, इनकी समस्त लीलाएँ अप्राकृत है और ये लीलायें भी अपने असमोर्ध्व रस–सौन्दर्यसे अप्राकृत क्षेत्र ब्रज–प्रदेशमें ही सम्पादित होती हैं । प्रेम भक्तिके चरम स्वरूपको यह व्रज प्रदेश अनादिकालसे प्रस्फुटित करता आया है । विलक्षण है यह भूमि जिसमें निवास करने वाले मनुष्य ही नहीं, पशु–पक्षी, तृण–गुल्म लतादि भी अपने प्रियतम श्रीकृष्णके प्रति शंका, संकोच, संशय, सम्भ्रम आदि भावोंसे शून्य परम आत्म निवेदनकी पराकाष्ठाके भावोंसे सदैव भरे रहते हैं । धन्यातिधन्य है यह भूमि और परम कल्याणमयी है, इस परम अप्राकृत लीला क्षेत्रकी रज, जो युगों–युगोंसे सन्तों एवं महज्जनों द्वारा सेवनीय रही है ।

इस ब्रजरजकी कैसी अभूतपूर्व महिमा है कि ब्रह्माजी भी इस रजकी अभिलाषा करते हैं, महात्मा उद्धव इस ब्रजरजके सेवनके लोभवश इस प्रदेशमें लता–पता बनकर जन्म लेना चाहते हैं । यह ब्रजरज अपने सेवन करने वाले भक्तोंको वह अनिर्वचनीय कृपा प्रसाद दान करती है जो पुत्र होने पर भी ब्रह्माजीको, आत्म स्वरूप होने पर भी शंकरजीको, और वक्षस्थल पर नित्य विराजित रहने वाली अर्धागिंनी होने पर भी लक्ष्मीजीको भगवान् श्रीकृष्ण तक नहीं दे पाये ।

यह व्रजरज भावकुभाव किसी भी प्रकारसे किसीके अंगोंमें लग भर जाय, नेत्रोंमें अंजनकी तरह बस क्षण भरके लिये ही सही अँज भर जाय, रसनाके माध्यमसे बस एक बार ही सही, उदरमें इसका प्रवेश भर हो जाय, फिर तो यह अवश्यंभावी रूपसे उस महाभाग्यवान्को उस श्रीकृष्ण रूप–माधुरीका पान कराती है जो अनन्त ब्रह्माण्डोंमें सर्वजयी एवं असमोर्ध्व है । जो श्रीकृष्ण रूप माधुरी लावण्यकी सार है और जो किसी सज्जासे सजायी सँवरी नहीं जाती अपितु स्वयं सिद्ध है । जो प्रतिक्षण नित्य नव नूतन होती है और जिसे अनादि अनन्त काल तक देखते रहने पर भी कभी तृप्ति होती ही नहीं।

जिसे पाकर फिर कुछ भी पानेकी लालसा नहीं रहती और स्वर्गादि लोकोंकी समग्र श्री, और बैकुण्ठादि लोकोंका परम वैभव भी जिसके सम्मुख तुच्छातितुच्छ हो जाता है । ऐसी मुकुन्द–प्रीति–प्रदाता यह व्रजरज है ।

पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा इस व्रज रजको देहके द्वादश स्थानोंमें प्रतिदिन लगाते थे और प्रतिदिवस पाँच बार स्नान करनेके उपरान्त पाँचों बार ही इसका सेवन करते थे । वे त्रिपुण्डकी तरह इसे शरीरके द्वादश स्थानोंमें जलसे गीलीकर मला करते थे । ललाट, कण्ठ, वक्षस्थलके दोनों ओर एवं नाभिस्थान, दोनों भुजाओंमें कन्धे सहित तीनों स्थानोंमें एवं पृष्ठदेशमें–इस प्रकार बारह स्थानोंमें प्रतिदिन पाँच बार वे इस ब्रजरजका ही त्रिपुण्ड्रवत् सेवन करते थे । वे यात्रा में जाते समय भी इस ब्रजरजकी वटिका बनाकर एक पोटलीमें साथ ले जाया करते थे एवं एक वटिका तो अपने उत्तरीय वस्त्रमें सदा छोर पर बाँधे रखते थे ।

यह व्रजरज जो पू. गुरुदेव प्रयोग करते थे उन्हें वल्लभ सम्प्रदायके एक वैष्णवने इक्कीस प्रकारके अति महत्वपूर्ण तीर्थ स्थलोंसे एकत्रित करके भेजी थी। इसका पूर्ण विवरण नीचे दिया जा रहा है ।

{प्रथम स्थान}

पुष्टिमार्गीय वल्लभ सम्प्रदायके भिन्न–भिन्न पीठोंके आचार्यगण व्रज चौरासी कोसकी यात्रा शरद ऋतुमें उठाया करते हैं । इस यात्रामें सम्मिलित वैष्णव यात्री यह यात्रा ४९ दिनोंमें पूर्ण करते हैं एवं लगभग ३४०–३५० मील पैदल यात्रा करते हैं ।

गोस्वामी श्री १०८ व्रजरत्नलालजी महाराजकी तीर्थ यात्रामें सम्मिलित इन महाभाग वैष्णव महानुभावने ३४० मील व्रज भूमिकी मिनट–मिनटके अन्तरालमें रज एकत्रित करके इस व्रजवाटिकाका निर्माण किया था ।

{द्वितीय स्थल}

इस चौरासी कोस व्रज यात्रामें जो–जो सरोवर आये, उन सभीकी गीली रज इसमें सम्मिलितकी गयी । इस यात्रामें प्रतिदिन पाँच सात कुण्ड प्रतिदिवस ही आते हैं, समग्र व्रजमें प्रकट–अप्रकट इन कुण्डोंका वैष्णवशास्त्र गर्ग संहितादिमें बहुत महत्व प्रदर्शित किया गया है । इनमें राधा कुण्ड, कृष्ण कुण्ड, गोविन्द कुण्ड, प्रेम सरोवर, क्षीर सागर, वृषभानुसर, कुसुम सरोवर, नारद कुण्ड, उद्धव कुण्ड आदि स्थल प्रसिद्ध हैं ।

{तृतीय स्थल}

इस यात्रामें प्रति दिवस ही कम–से–कम पाँच–सात मन्दिर आया करते थे, उन स्थलोंकी रज भी इसमें सम्मिलितकी गयी ।

{चतुर्थ स्थल}

जिन मन्दिरोंके आँगनमें तुलसी वन होते थे अथवा यात्राके पथमें जहाँ भी वन–तुलसी दिखाई पड़ जाती थी, उन वृन्दादेवी {तुलसी}के जड़ मूल स्थलकी रज भी इसमें मिलायी गयी ।

{पंचम स्थल}

ब्रजमें अनेक गंगा हैं, जैसे मानसी गंगा, कृष्ण गंगा, पाण्डव गंगा, अलकनन्दागंगा, चरणगंगा–इन सबकी गीली मिट्टी भी इसमें मिलायी गयी ।

{षष्ठ स्थल}

इस चौरासी कोसी यात्रामें जहाँ–जहाँ यमुनाजी मिलती गई, वहाँ–वहाँसे लगभग सैकड़ों स्थानोंसे ही गीली यमुनाजीकी रज इसमें समाहित की गयी।

{सप्तम स्थल}

जहाँ–जहाँ यात्रामें भगवान श्रीकृष्णके अथवा बलदेवजीके चरण चिन्ह उपलब्ध हुए–जैसे चरण–पहाड़ी, व्योमासुरकी गुफा, भोजन थाली इत्यादि–वहाँकी रज भी लेकर इसमें मिला दी गयी ।

{अष्टम स्थल}

भगवानकी जिन–जिन स्थलोंमें प्रमुख लीलाएँ संघटित हुई, जैसे ऊखल–बन्धन, मृद भक्षण, दान लीला, मान लीला, रास लीला–इन सभी स्थलोंकी रज भी इसमें मिला ली गयी । ब्रज यात्रामें जितने वन और कदम्बखंडियाँ आती हैं, जहाँ भगवान्ने गोचारण, आँखमिचोनी, प्रलम्ब वध, धेनुक–वध आदि असंख्य लीलाएँ सम्पादित की हैं, लीला सम्बन्धी अनेक प्रमुख वृक्ष जैसे टेरकदम्ब, अक्षयवट, ऐंठाकदम्ब, संकेतवट इत्यादि इनके मूलकी, इनके छाया स्थलकी अथवा इनके पेड़ोंमें लगी रज भी इसमें निहितकर ली गयी ।

{नवम स्थल}

ब्रज मण्डलमें बहुतसे महात्माओंकी तपोभूमि हैं, उनके समाधि–स्थान हैं, उनकी रज भी इसमें मिला ली गयी। इनमें सूरदासजीकी तपोभूमि चन्द्रसरोवर, नारायण स्वामीकी तपोभूमि, कुसुम सरोवर, रघुनाथ गोस्वामीका समाधि स्थल, राधाकुण्ड परम प्रसिद्ध हैं ।

{दशम स्थल}

साक्षात्कारी प्रसिद्ध जीवित महात्माओंकी चरण रज भी इसमें सम्मिलित कर ली गयी थी, जैसे रामकृष्णदासजी महाराज वृन्दावनमें उन दिनों जीवित निवास कर रहे थे ।

{एकादश स्थल}

प्रिया–प्रियतम सखीवृन्द सहित रासधारी रूपमें यात्रामें संग–संग थे, उनके चरणारविन्दकी रज भी इसमें निहितकी गयी ।

{द्वादश स्थल}

ब्रज चौरासी कोसमें महाप्रभु वल्लभाचार्यजीकी बैठकें, जहाँ उन्होंने श्रीमद्भागवतके पारायण किये हैं, वहाँकी रज भी इसमें निहित है ।

{त्रयोदश स्थल}

हरिद्वारसे गंगाजीकी नहर जो व्रजमें आयी है, उसके विभिन्न स्थलकी रज भी इसमें निहित है ।

{चतुर्दश स्थल}

श्रीगिरिराज गोवर्धनकी परिक्रमा स्थलीकी मिनट–मिनट पर ली गयी रज भी इसमें निहितकी गयी । श्रीगिरिराज पर्वत पर स्थित श्रीनाथजीके प्राकट्य स्थलकी रज एवं श्रीमुखारविन्दके स्थानकी रज भी इसमें निहित की गयी ।

{पंचदश स्थल}

श्रीगोवर्धन ग्राममें श्रीगिरिराजजीके मुख्य मन्दिर एवं अन्य मन्दिरोंकी रज भी इसमें निहित है । श्रीमानसीगंगाकी परिक्रमाकी रज भी इसमें सम्मिलित है ।

{षोड़श स्थल}

श्रीवृन्दावन धामकी सैकड़ों स्थानोंसे रज ली गयी । घाटोंकी, सरोवरोंकी, लीलास्थलियोंकी, महात्माओंके स्थानोंकी, समाधियोंकी, श्रीबिहारीजीके प्राकट्य स्थलकी, निधिवनकी, श्रीयुगलसरकारके सेवाकुञ्जकी, श्रीयमुनाजीके विभिन्न स्थानोंकी, श्रीवृन्दावनके चारों ओर परिक्रमा करके छः मीलके मार्गकी, मिनट–मिनट पर रज एकत्रितकी गयी एवं इसमें मिलायी गयी ।

{सप्तदश स्थल}

श्रीमथुराजीके घाटोंकी, मन्दिरोंकी, सरोवरोंकी, कंसके टीलेकी, जन्म–स्थान आदिकी, साथ ही आठ मीलके परिक्रमा मार्गकी भी मिनट–मिनट पर रज लेकर इसमें समाहित की गयी ।

{अष्टदश स्थल}

श्रीनाथजीके चरणोदक एवं स्नानीय सम्पूर्ण जलको पवित्ररज मिलाकर चरणामृत पेड़े बनाये जाते हैं, बहुतसे भक्त इनको घोलकर नियमपूर्वक प्रतिदिन चरणामृतके रूपमें लेते हैं अथवा मस्तक पर लेपन करते हैं । ये पेड़े भी इस

वटीमें पर्याप्त मात्रामें मिलाये गये थे ।

{एकोनविंश स्थल}

श्री वृन्दावनके बाँके बिहारीजीके सर्वांगमें लेपन किया गया, अक्षय तृतीयाका प्रसादी चन्दन भी इसमें मिलाया गया ।

{विंश स्थल}

श्रीद्वारकाधामसे आया हुआ गोपी तलाईका गोपीचन्दन भी इसमें निहित किया गया ।

{एकविंश स्थल}

श्रीवृन्दावनके १०८ मन्दिर, श्रीमथुराधाम के १०८ मन्दिर, श्रीब्रजमण्डल के १०६ मन्दिर, श्री चौरासी कोस यात्रामें पड़ने वाले १०८ मन्दिरोंका प्रसादी चन्दन भी इसमें सम्मिलित किया गया है ।

इस प्रकार उपरोक्त इक्कीस स्थलोंसे एकत्रितकी गई यह पावनतम व्रजरज जो किसी महाभाग वैष्णव द्वारा भेजी गयी थी, पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाके अंगोंमें नित्य लिप्त होती थी ।